* नमः परमात्मने *

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत

अनन्तश्री स्वामी दयानन्दजी महाराजद्वारा
सम्पादित

श्रीभारतधर्म महामण्डलके शास्त्रप्रकाश विभाग-
द्वारा प्रकाशित

काशी

तृतीयावृत्ति] संवत् २०३१ [मूल्य ४) रु०

* नमः परमात्मने *

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत

अनन्तश्री स्वामी दयानन्दजी महाराजद्वारा सम्पादित

श्रीभारतधर्म महामण्डलके शास्त्रप्रकाश विभाग-
द्वारा प्रकाशित

काशी

तृतीयावृत्ति] संवत् २०२१ [मूल्य ४) रु०

श्रीविश्वनाथो जयति ।

नवीनदृष्टिमें प्रवीण भारतके द्वितीय संस्करणकी

भूमिका

यं पृथक् धर्मचरणाः पृथक्धर्मफलैषिणः ।
पृथक्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ।।

हिन्दूजातिकी अखिल भारतीय प्राचीनतम धर्ममहासभा श्रीभारतधर्ममहा-मण्डलके शास्त्रप्रकाशक विभागका विराट् आयोजन हिन्दूजातिकी आध्यात्मिक उन्नति, आधिदैविक उन्नति और आधिभौतिक उन्नतिकेलिये किया गया है। वास्तवमें जबतक सनातनधर्म्मावलम्बी प्रजाकी धार्म्मिक उन्नतिके साथही साथ उसकी सामाजिक उन्नति, आर्थिक उन्नति और नैतिक उन्नतिका प्रयत्न नहीं किया जायगा, तबतक धर्म्मप्राण इस आर्यजातिकी यथार्थ उन्नति होना असम्भव है। व्यक्तिगत और जातिगत उन्नतिकेलिये ग्रन्थप्रकाशका काम सबसे प्रधान समझा जा सकता है क्योंकि ग्रन्थही ज्ञानके आधाररूप होनेकेकारण सब प्रकारकी उन्नतिका बीज जातीय ग्रन्थोंमें सुरक्षित रह सकता है। इसकारण श्रीमहामण्डलके शास्त्रप्रकाशक विभागद्वारा अभीतक निम्नलिखित श्रेणीके ग्रन्थरत्न प्रणीत, संग्रहीत और प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं।

(१) कर्म्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धीय साम्प्रदायिक विरोध दूर करनेके उपयोगी विभिन्न गीता और संहिता आदि धर्म्मग्रन्थ और उनके हिन्दी अनुवाद वैज्ञानिक टिप्पणियों सहित ।

(२) दर्शनशास्त्र जो सनातनधर्म्मविज्ञानकी भित्तिरूप हैं, उनके अनेक लुप्त ग्रन्थोंका उद्धार करके सब प्रकारके दार्शनिक सूत्रोंपर वर्त्तमान देशकालके अनुसार संस्कृतभाष्य और हिन्दीभाषाकी पुष्टिकेलिये सबका हिन्दी संस्करण ।

(३) हिन्दू बालक बालिकाओंकी धार्मिक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा और नैतिक शिक्षाके उपयोगी पाठ्य पुस्तकें हिन्दी भाषामें प्रणयन और मुद्रण ।

(४) हिन्दीभाषा जो हिन्दुस्तानकी वर्त्तमान मातृभाषा है, उसकी पुष्टिकेलिये अनेक प्रकारके आवश्यकीय ग्रन्थरत्नोंका प्रणयन और प्रकाशन ।

(५) हिन्दूजातिकी धार्मिक, सामाजिक और नैतिक उन्नतिकेलिये अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाओंका प्रकाशन, वर्त्तमान देशकालोपयोगी शिक्षा विस्तार संग्रह ग्रन्थ वितरण ।

ऊपरलिखित श्रेणीके ग्रन्थरत्नोंके प्रणयन और प्रकाशनकार्यके साथ ही साथ भारतवर्षकी अन्य भाषाओंमें तथा अंग्रेजी भाषामें उनका अनुवाद होकर प्रकाशित करनेकाभी प्रयत्न जारी है ।

साधारणरूपसे यह नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत नामक ग्रन्थ पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे प्रमादग्रस्त व्यक्तियोंको स्वजातिगौरवकी शिक्षा देनेके अर्थ पहले प्रकाशित हुआ था । अब मेरे गुरुभाई स्वामी दयानन्दजीकेद्वारा संस्कृत और परिवर्द्धित होकर इसका दूसरा संस्करण यह प्रकाशित हुआ है । यह संस्करण पूर्वकथित उद्देश्यको तो और भी अच्छी तरह सुसिद्ध करेगाही किन्तु विशेषतः स्कूल कालेज और पाठशालाओंमें पाठ्यपुस्तकरूपसे भी बहुत हितसाधन कर सकेगा ।

इस ग्रन्थ रत्नका स्वत्वाधिकार पूज्यपाद श्रीगुरुदेवके अन्यान्य ग्रन्थोंके अनुसार दीन दरिद्रोंके सेवार्थ स्थापित श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णादानभण्डारको अर्पण किया गया है ।

काशीधाम
श्रीगुरुपूर्णिमा
संवत् १९७८ वैक्रमीय

विवेकानन्द

श्रीजगन्मात्रे नमः

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारतके तृतीय संस्करण की

भूमिका

भगवान् मनुने कह रखा है कि :—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अर्थात् इसी देशके अग्रजन्मा महापुरुषोंसे पृथ्वीकी सभी मनुष्यजातियोंने अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा पायी थी, वही आर्यजाति दुर्भाग्यवश वर्तमान समयमें अंग्रेजी शिक्षासे शिक्षित सज्जन तथा देवियाँ, आचार-विचार, रहन-सहन तथा व्यवहारमें विदेशियों और विजातियोंका अन्धाधुन्ध नकल या अनुकरण करके अपनेको गौरवान्वित समझती हैं। इसकारण इस समय पथभ्रान्त मानव-जातिको सच्चा मार्ग-दर्शन करनेवाला कोई नहीं है; किन्तु यह पृथ्वी कभी भी किसी विषयमें निर्बीज नहीं हुई है, भले ही उनकी संख्या कम हो गयी हो। आज भी विषय भोग और विलासितामें लवलीन पश्चिम देशोंके युवक, युवतीगण भारतीय साधु महात्माओंके अनुयायी बन रहे हैं। अपने प्राचीन स्वरूपको और गौरवका स्मरण करनेसे मनुष्य यह समझ सकता है कि, हमारे पूर्वज कैसे थे और आज हम किस अधःपतनके गर्तमें गिर गये हैं। मनुष्य जीवनकी सफलता एवं पूर्णता केवल विषयोंका सेवन एवं विलासितामें नहीं; किन्तु अपने वास्तविक स्वरूपके पहचानने तथा नित्य अखण्ड आनन्दकी प्राप्तिमें है। इसीलिये हम अतीतमें कैसे थे, इसे प्रत्येक नर-नारीको जाननेकी आवश्यकता है। इसी उद्देश्य-की पूर्तिकेलिये सनातनधर्मियोंकी एकमात्र प्राचीनतम विराट् धर्मसंस्था श्रीभारत-

धर्म महामण्डलके संस्थापक भगवत्पूज्यपाद महर्षि ११०८ स्वामी श्री ज्ञानानन्दजी महाराज प्रभुने इस ग्रन्थकी रचना की थी; जिससे हमारे देशवासी अपने पूर्वजों-के गौरवको जानकर उनके अनुरूप अपनेको बनानेका प्रयत्न करें। इस ग्रन्थका स्वाध्याय प्रत्येक भारतीय नर-नारीको अवश्य करना चाहिये। इसके स्वाध्यायसे प्राचीन भारतका वास्तविक स्वरूप पाठकोंके सामने साकार हो जायेगा।

काशीधाम
कार्तिकपूर्णिमा
विक्रम सम्वत् २०३१ } विद्यादेवी

नवीनदृष्टिमें प्रवीणभारत

की

अध्याय सूची ।





❀ ॐ नमः परमात्मने ❀

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत



प्रस्तावना

(१)

एतेद्दृशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

प्रधान धर्म्मशास्त्रप्रणेता राजर्षि मनुने लिखा है कि, इस भारतवर्षके ब्राह्मणोंसे शिक्षाप्राप्त सम्पूर्ण जगत् ज्ञान प्राप्त करेगा, अर्थात् भारतवर्ष ही सृष्टिके आदिमें ज्ञानकी पूर्णताको प्राप्त करके परवर्ती कालमें इस पृथिवीके और देशोंको अपने उपदेशद्वारा शिक्षित करेगा। भारतके इस नवीन युगमें, कराल कलिकालके इस वर्तमान विकराल समयमें, प्राचीन आर्य्यजातिकी इस अधःपतित अवस्थामें कौन इस मनुवाक्यपर विश्वास कर सकता है ? जब देखते हैं कि, भारतवासी आज सामान्य ज्ञानाप्राप्तिकेलिये अन्य देशवासियोंके द्वारपर भिखारी बने फिरते हैं, जब देखते हैं कि, अन्य जातियोंकी साधारण युक्तिसे ही आर्य्य जातिने स्वीकार कर लिया है कि, हम भी दूसरे देशके रहनेवाले थे, हम भी पूर्व्वकालमें असभ्य अज्ञानी पशुवत् थे, जब देखते हैं कि उन्होंने अनार्य्यभावको आर्य्यभाव समझकर ग्रहण कर लिया है और त्रिकालदर्शी महर्षियोंकेद्वारा उपदेश किये हुए आर्य्यभावको अनार्य्य असाध्यभाव समझकर त्याग देनेमें अग्रसर हुए हैं, तब कैसे विश्वास

करें कि, वे ऐसे शास्त्रवाक्योंको सत्य समझ सकते हैं? जिसप्रकार उन्मादग्रस्त मनुष्य बुद्धिनाशके कारण सारे संसारको उन्मादग्रस्त देखता है, वैसे ही कालप्रभावके कारण कुशिक्षाके फलसे मलिन बुद्धि होकर आज आर्य्य संतान भी अपने आपको अनार्य्य समझने लगे हैं, और इस कारण ही वे अपने अभ्रान्त शास्त्र वाक्योंको भ्रान्तिमूलक समझनेमें प्रवृत्त हुए हैं। आजकलके नवीन भारतवासी कहते हैं कि, हम युक्ति विरुद्ध विषयको नहीं मानते, यदि युक्तियुक्त विषय हो तो स्वीकार कर सकते हैं। इस कारण उनके ही वर्त्तमान पश्चिमी गुरुओंके प्रामाणिक लेख तथा सिद्धान्तोंकेद्वारा सिद्ध किया जायगा कि, महर्षियोंकी इस प्रकारकी भविष्यद्वाणी मिथ्या अथवा काल्पनिक नहीं है। इस पुस्तकमें उनकी ही नवीन युक्तियाँ तथा साक्षात् प्रमाण और पश्चिमी विद्वानोंके अनुमान प्रमाण द्वारा तथा पूज्यपाद महर्षियोंकी गंभीर, पूर्ण और अभ्रान्त ज्ञान-गरिमाके प्रमाणसंग्रह द्वारा नवीनशिक्षाप्राप्त भारतका भ्रम दूर करनेका यत्न किया जायगा। वस्तुतः उनकी ही नवीन दृष्टिसे इस पुस्तकमें प्रवीण भारतकी अवस्थाका विचार किया जायगा।

प्रधान मन्त्री
शिवनन्दनलाल दर
श्री भारतधर्म महामण्डल
जगतगंज, वाराणसी

प्रकृति विचार

(२)

बहिःप्रकृति अन्तःप्रकृतिकी धात्री है, जिस जिस प्रकारके बहिःप्रकृति-युक्त स्थानमें जीव लालित पालित होता है, उसकी अंतःप्रकृति भी तद्रूप ही हो जाती है। मनुष्य जैसा प्रकृतिमाताकी गोदमें प्रति-पालित होते हैं, उससे वैसी ही शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। प्रकृति माता उनको अपने हाव भाव और इङ्गितद्वारा जैसे सिखाती जाती है, वैसे ही वे प्रकृतिपुत्र उठना, बैठना, हँसना, बोलना आदि कार्य्य सीखते जाते हैं। यह बहिःप्रकृतिके प्रभावका ही कारण है कि, आफ्रिका देशमें कृष्णवर्ण काफ़री और यूरोप देशमें श्वेतवर्ण यूरोपीय मनुष्य जन्म लेते हैं; यह प्रकृतिके प्रभावका ही कारण है कि, मनुष्य पिता-मातासे जन्मा हुआ शिशु, व्याघ्र–सङ्गमें प्रतिपालित होकर (जैसे कानपुर जिलेमें सन् १८५९ ई० में एक चौदह पन्द्रह सालका बालक भेड़ियोंके सङ्गमें मिला था) व्याघ्र—वृत्तिको धारण कर लेता है; यह प्रकृतिके प्रभावका ही कारण है कि, आर्य्य जातिके मनुष्य ही जब पञ्जाबमें जन्म ग्रहण करते हैं, तो बलवान् होते हैं; और वे ही जब बङ्ग देशमें जन्म ग्रहण करते हैं तो कोमल शरीर होते हैं; भारतकी प्रकृति दूसरे देशोंकी प्रकृतिसे कुछ विलक्षण ही है। जगत्‌के किसी देशमें तीन ऋतु और किसी देशमें चार ऋतु प्रकट हुआ करती हैं; परन्तु यह भारतवर्ष ही है कि जहाँ ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शीत और वसन्त रूपी छः ऋतु पूर्णरूपसे प्रकाशित होती रहती हैं। जगत्‌के विशेष विशेष देशोंमें एक समयपर एक ही ऋतु प्रकट हुआ करती है, परन्तु यह भारतवर्ष ही है, जहाँ अन्वेषण करनेपर एक ही कालमें विशेष-विशेष स्थानोंमें विशेष-२ ऋतु प्रकट ही रहती हैं; ग्रीष्म-कालमें यदिच मारवाड़ प्रदेशमें घोर ग्रीष्मका विकाश होता है, तथापि

उसी समयमें दक्षिणावर्त्तमें वसन्त और हिमालयकीओर नाना प्रदेशोंमें शीत हेमन्त आदि ऋतुओंका प्रादुर्भाव भो बना रहता है; मानों यह भारतवर्ष ही है कि जहाँ छः ऋतु हस्तधारण करते हुए विचरण करते ही रहते हैं; ऋतुओंमें भ्रातृप्रेम होना भारतवर्षमें ही सम्भव है। यह भारतवर्ष ही है, जहाँ पृथिवीके सब पर्वतोंसे अति उच्चपर्वत हिमालय विराजमान है; यह भारतवर्ष ही है, जहाँ पृथिवीको सकल नदियोंमें पवित्र, विशेष विभूतियुक्त गङ्गा नदी अपने तरलतरङ्गोंको धारण करती हुई जीवोंको पवित्र कर रही है। यूरापके तथा इस देशके अनेक वैज्ञानिक पण्डितोंने परीक्षाकेद्वारा निर्णय कर लिया है कि, पृथिवीकी और और नदियोंसे गङ्गा नदीमें बहुत कुछ विलक्षणता है। उनको यह पता लग गया है कि, गङ्गाकी वायु, गङ्गाकी मिट्टी, गङ्गाका जल, सभीमें शरीरको पुष्ट तथा आरोग्य करनेकी अपूर्व शक्ति विद्यमान हैं। गङ्गाकी मिट्टीके मलनेसे सब प्रकारके चर्मरोग आराम होते हैं। गङ्गाजलमें स्नान करनेसे शारीरिक व्याधि तथा शिरोरोग आराम होते हैं। गंगाके वायुसेवनसे भी शरीर स्वच्छ हो जाता है। गङ्गाका जल पीनेसे अजीर्ण रोगकी तो बात ही क्या, जीर्णज्वर आदि कठिन व्याधियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। केवल इतना हीं नहीं, आजकल यूरोपके बड़े-बड़े सायन्स वालोंने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि, गंगाजलमें शरीरके बलको बढ़ानेकी अपूर्व शक्ति विद्यमान है, जिससे रोगमुक्तिके बाद बल प्राप्त करनेकेलिये डाक्टरी टानिकके बदले यदि रोगी गङ्गाजल सेवन करे, तो शरीरमें अपूर्वबल प्राप्त हो सकता है। कूप तथा अन्य नदियोंका जल दो चार दिनोंमें ही सड़कर पीने योग्य नहीं रहता, किन्तु गङ्गाजलमें क्या अपूर्वता है कि, इसे चाहे कितनी ही दूर ले जाकर वर्षों रक्खें, गङ्गाजल कभी नहीं सड़ेगा और वैसा ही स्वादिष्ट तथा पान करने योग्य बना रहेगा। जितने संक्रामक रोग और प्लेग आदि कठिन रोग देशका सर्वनाश करते हैं, इनके विष प्रायः दूषित स्थान या दूषित जलमें उत्पन्न होते हैं। मलेरिया, प्लेग, विशूचिका (हैजा) आदि

अनेक रोग विषाक्त कोटाणुके द्वारा फैलते हैं। वे सब कीट प्रायः जलमें उत्पन्न हैं। किन्तु परीक्षा करके देखा गया है कि, गङ्गाजलमें कभी किसी रोगके कीट नहीं उत्पन्न होते हैं और इतना तक सायन्सवालोंने परीक्षा कर निश्चय कर लिया है कि, जो नाना देशोंमें उत्पन्न हुआ करते है, वे सब भारतवर्षके पावन गङ्गाजलमें रोगके कीटोंको लाकर छोड़ देने पर वे कीट थोड़े ही समयके भीतर मर जाते हैं। गङ्गाजलमें इस प्रकारकी अपूर्वशक्तिको देखकर ही प्राचीन आर्य महर्षियोंने कहा है :—

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ॥

जराग्रस्त रोगक्लिष्ट शरीरकेलिये गङ्गाजल ही औषध तथा नारायण ही चिकित्सक हैं। पृथिवीके और देशोंमें प्रायः एक ही प्रकारकी भूमि देखनेमें आती है, परन्तु प्रकृतिमाताकी लीलाभूमि इस भारतभूमिमें सब प्रकारकी भूमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं; अनन्त तुषार-आवृत पर्वत-शिखर, नाना प्रकारके वृक्ष, लता, गुल्म, औषधिसे परिपूर्ण उपत्यकायें, अनन्त योजनव्यापी सुन्दर समतल भूमि, भीषण बालुकामय जलशून्य मरुस्थल और जलपूर्ण निम्न भूमि (यथा-कच्छ प्रदेशमें और सुन्दर वन आदिमें) आदि सब प्रकारकी भूमिविचित्रता इस भारतवर्षमें ही देखनेमें आती है। पृथिवीके और नाना देशोंमें एक वर्णके मनुष्य ही देखे जाते हैं, (यथा–यूरोपमें श्वेतवर्णके मनुष्य, अफ्रिकामें कृष्णवर्णके मनुष्य और चीनमें पीतवर्णके मनुष्य इत्यादि) परन्तु यह भारत-प्रकृतिकी ही पूर्णता है कि, यहाँके अधिवासियोंमें सब वर्ण देख पड़ते हैं, उज्ज्वल-गौर, गौर, उज्ज्वलश्याम, श्याम, कृष्ण और पीत, सब वर्णके भारत-वासी ही नयनगोचर होते हैं। यह भारत-प्रकृतिकी ही श्रेष्ठता है कि, यहाँ समस्त संसारके जीवजन्तु जन्मा करते हैं; वृहत्‌हस्तीसे लेकर नाना प्रकारके विचित्र मूषिकतक इस भारत प्रकृतिकी पूर्णताको प्रमाणित करते हैं। अन्वेषण द्वारा यही सिद्ध होगा कि, जितने प्रकारके श्रेष्ठ और

निकृष्ट जन्तु, जितने प्रकारके श्रेष्ठ और निकृष्ट कीट और जितने प्रकारके श्रेष्ट और निकृष्ट पक्षी पृथिवी और उपवनोंको सुशोभित करते हैं; और कर सकते हैं, सभी यहाँ हैं या यहाँ जी सकते हैं। कदापि कोई विलक्षण जन्तु यहाँ उत्पन्न न होता हो अथवा उसकी उत्पत्ति यहाँसे नष्ट हो गयी हो, तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि, वे सब इस भूमिमें उत्पन्न होकर जीवित रह सकते हैं; परन्तु यहाँके बहुतेरे जीव यदि यूरोप आदि देशोंमें भेजे जायँ, तो कदापि वहाँकी प्रकृतिमें जीवित नहीं रह सकते; इस कारणसे भारतीय प्रकृतिकी श्रेष्ठता सर्ववादिसम्मत है और यह तो जगद् विख्यात है कि, जितने प्रकारके फल, जितने प्रकारके अन्न, जितने प्रकारके वृक्ष, लता, गुल्म, औषधि और बूटी आदि भारतवर्षमें उत्पन्न होती हैं, उस प्रकारकी और किसी देशमें उत्पन्न हो ही नहीं सकतीं, इस कारण यह भारतभूमि ही पृथिवीकी और भूमियोंकी आदर्शभूमि है। इसी कारण भारतकी प्रकृति ही पूर्ण प्रकृतिशक्तियुक्त है। यह कह ही चुके हैं कि, बहिःप्रकृति अन्तः-प्रकृतिकी धात्री है; इस कारण जब भारतकी प्रकृति ही पूर्ण है, तब भारतवर्षमें ही पूर्ण मानवका जन्म होना सम्भव है। यदिच कोई यूरोपवासी संस्कृतमें विशेष ज्ञानलाभ करले, यदिच कोई चीन देशवासी अथवा कोई तुर्क देशवासी संस्कृत विद्यामें निपुण हो जावे, तथापि यह प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है कि, वे कदापि संस्कृत भाषाका शुद्ध उच्चारण कर नहीं सकेंगे, परन्तु यह भारतवासियोंकी ही शक्ति है कि, वे चाहे जिस भाषाकी योग्यता लाभ करें, उसी भाषाके उच्चारणमें पूर्ण निपुणता प्राप्तकर लिया करते हैं।

धन और सम्पत्तिके सिवाय कोई मानव जाति सम्पूर्ण उन्नतिको प्राप्त नहीं कर सकती, परन्तु इस विचारमें भी भारतवर्ष सर्वोत्कृष्ट ही है. इस भूमिकी अद्भुत उर्वराशक्ति; इस भूमिके अन्तर्गत स्वर्ण, रौप्य, मणि, माणिक्य और नाना प्रकारके खनिज पदार्थोंकी खानें, भारत समुद्र गर्भकी मुक्ता और प्रवाल आदि मूल्यवान् पदार्थोंकी उत्पादिका शक्ति और भारत-वर्षके वनोंके नाना अनमोल पदार्थोंकी विचित्रता ही भारतके ऐश्वर्य्यकी-

पूर्णता सिद्ध कर रही हैं। यह भारतवर्षकी ऐश्वर्य्यपूर्णताका ही कारण है कि, आज प्राय: दो सहस्र वर्षोंसे यह विजातीय नरपतिगण द्वारा नियमित रूपसे अधिकृत होने पर भी अभी तक इसके ऐश्वर्य्यकी पूर्ण हानि नहीं हुई है, यह भारतवर्षकी ऐश्वर्य्य पूर्णताका ही कारण है कि, आज भी सर्व्वश्रेष्ठ सम्राटोंकी तीव्रलोलुपदृष्टि इसपर बनी हुई है, यह भारतवर्षकी ऐश्वर्य्य पूर्णताका ही कारण है कि, भारतविजयी नरपति पृथिवीमें सर्व्वश्रेष्ठ सम्राट् कहलाता है। इन सब प्रत्यक्ष प्रमाणोंके अतिरिक्त लेखद्वारा भी भारत प्रकृतिकी श्रेष्ठताका प्रमाण अनेक यूरोपीय विद्वान्गण[1]-लिखित भारतके इतिहास आदिमें पाया जाता है; जितने निरपेक्ष पश्चिमी ऐतिहासिक हुए हैं, उन सबोंने भारतवर्षको ही पृथिवी भरमें सर्वश्रेष्ठ प्रकृतियुक्त देशके रूपमें वर्णन किया है।

प्रोफेसर मेक्समूलर साहबने कहा है—"समस्त पृथिवीमें यदि वैसा कोई देश मुझे बताना हो, जिसको प्रकृति माताने धन, ऐश्वर्य, शक्ति और सौंदर्यके द्वारा पूर्ण कर रक्खा है, यहाँ तक कि, जिसे पृथिवीमें स्वर्ग कहने पर भी अत्युक्ति नहीं होगी, तो मैं मुक्तकण्ठ होकर बता दूँगा कि, वह देश भारतवर्ष है। यदि कोई मुझसे कहे कि, किस देशके आकाशके नीचे मनुष्यके अन्त:करणकी पूर्णता प्राप्त हुई थी और जीवनरहस्यके कठिन सिद्धान्तोंकी मीमांसा हुई थी, जिसको प्लेटो और कान्ट जैसे दार्शनिक पुरुषोंके दार्शनिक ग्रन्थोंके पाठक भी जानकर ज्ञानवान् हो सकते हैं, तो मैं बता दूँगा कि, वह देश भारतवर्ष है। यदि मैं अपने आत्मासे पूछूं कि हम यूरोपवासी जिनकी चिन्ताशक्तिकी पुष्टि ग्रीक रोमन

---

1. Maxmuller's India—what can it teach us.
Prof. Heren—Historical Researches vol II.
Murray's History of India.
Col Tod's Rajasthan.
Count Bjornstjerna—Theogony of the Hindus.

तथा समेटिक जातिकी चिन्ताशक्ति द्वारा हुई हैं, अपने जीवनको पूर्ण उदार, विश्वव्यापी और मनुष्यत्वपूर्ण बनानेकेलिये तथा चिरजीवनतक पूर्ण उन्नति प्राप्त करनेके लिये किस देशके साहित्य और शास्त्रसे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, तो मुझे यही उत्तर मिलेगा कि, वह देश भारतवर्ष है। भाषा, धर्म, प्राचीन इतिहास, दर्शन शास्त्र, आचार, शिल्प, ज्ञान, विज्ञान, कोई भी विषय मनुष्य जानना चाहे, सभीका अपूर्व तथा अनुपम उपादान प्रकृति माताके अनन्त भण्डाररूप भारतवर्षमें ही प्राप्त हो सकता है।" प्रोफेसर हीरेनने कहा है—"केवल एशिया ही नहीं, अधिकन्तु समस्त पश्चिम देशके ज्ञान और धर्मका आधारस्थान यह भारतवर्ष है"। मि० मरे साहबने लिखा है—"भारतवर्षका प्राकृतिक दृश्य तथा इस भूमिमें उत्पन्न अपरिमित द्रव्योंकी तुलना पृथिवीके और किसी देशके साथ नहीं हो सकती है"। कर्नल टाड साहबने कहा है—"ग्रीस देशके दार्शनिकोंने जिनके आदर्शको ग्रहण किया था, प्लेटो पिथा-गोरस आदि जिनके शिष्यतुल्य थे, उन मुनियोंका देश भारतवर्ष है। जिस देशकी ज्योतिर्विद्याके प्रभावसे आज भी यूरोप मुग्ध है और स्थापत्य-विद्या तथा सङ्गीतविद्याके प्रभावसे जगत् मुग्ध है, वही देश भारतवर्ष है।" काऊन्ट ज्योर्णस जार्णाने लिखा है—"भारतकी प्रत्येक वस्तु ही अपूर्व शोभासे युक्त है, मानो प्रकृति माता जादूकी मूर्तिको धारण करके यहाँ पर विराजमान है।" इन कारणोंसे तथा इन सब प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि, भारतवर्ष ही पूर्णप्रकृतियुक्त भूमि है और पूर्ण प्रकृतियुक्त मानव भारतवर्षमें ही जन्म ग्रहण कर सकते हैं।

—:०:—

शरीरकी पूर्णता

(३)

श्री भगवान् वेदव्यासजीने कहा है कि :—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गाऽपवर्गाऽऽस्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्" ।।

स्वर्गके देवत्वसे भारतमें मनुष्यदेह प्राप्त करना श्रेष्ठ है, क्योंकि सुकृती पुरुष यहाँ जन्म ग्रहण करके स्वर्ग भोग प्राप्त किया करते हैं। राजऋषि मनुजीने भी कहा है कि "चाहे पृथिवीके और किसी भागमें जन्म हो परन्तु यदि मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति करना चाहे, तो इस श्रेष्ठ भूमिका ही आश्रय लेना उचित है।" जब मनुष्य पीड़ित अथवा हीनबल रहता है, तब वह पूर्णरूपेण न तो शारीरिक शक्तिकी चालना कर सकता है और न मानसिक उन्नति ही कर सकता है, परन्तु रोग अथवा दुर्बलतासे मुक्त होनेपर ही वह अपनी योग्यताके अनुसार सब कुछ कर सकता है; उसी प्रमाणके अनुसार जब मानव पूर्ण प्रकृतियुक्त स्थानमें जन्म ग्रहण करेंगे, तभी वे शारीरिक और मानसिक पूर्णताको प्राप्त कर सकेंगे; और जब प्राकृतिक पूर्णता प्राप्त करेंगे, तभी उन्नत बुद्धियुक्त होकर आध्यात्मिक पथमें अग्रसर होते हुए ऐहलौकिक और पारलौकिक श्रेष्ठताको प्राप्त कर सकेंगे। कालप्रभावसे वर्त्तमान भारतकी अवस्था कुछ ही हो, अदृष्टचक्रके परिवर्त्तनसे भारतवर्ष कैसी ही अधोगतिको प्राप्त हो गया हो; परन्तु भारतवर्षमें ही प्रकृतिका पूर्ण विकाश है और भारतवर्षमें ही पूर्ण मानव उत्पन्न होकर अपनी शक्तियों-को यथावत् रख सकते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। पूर्ण प्रकृतिका संग होनेसे शरीर उन्नत होकर सत्त्वगुणविशिष्ट होता है, शरीरके सत्त्व-

गुण विशिष्ट होनेसे अन्तःकरण भी सत्त्वगुणको धारण करता है, इस कारण सात्त्विकभूमि भारतभूमिको महर्षियोंने स्वर्गसे भी श्रेष्ठ पद दिया है। वेद और शास्त्रोंसे यह अच्छी तरहसे प्रमाणित है कि, आर्य्यजातिका आदि निवास भारतवर्षही है और इस भारतवर्षमें सृष्टिके आदिसे लेकर आजपर्यन्त आत्माकी उन्नतिके विचार धारावाहिकरूपसे चले आ रहे हैं। जिस प्रकार एक सद्‌गृहस्थके कुलमें यदि नियमित धर्मचर्चा चली आती हो, तो उस गृहस्थके नरनारियोंमें थोड़ा वहुत धर्मभाव होना स्वतःसिद्ध है। उसी उदाहरणके अनुसार यह विचार निश्चय होगा कि, जिस भारतवर्षका समष्टिचिदाकाश अनादिकालसे धर्मचर्चा और आध्यात्मिक उन्नतिको चर्चाके संस्कारोंसे पूर्ण हो रहा है, उस भारतवर्षके नर नारियोंमें स्वभावतः आध्यात्मिक उन्नतिके लक्षण विद्यमान रहना भी निश्चित है। जैसी प्रकृतिका संग रहेगा, वैसेही साधक साधनपथमें अग्रसर हो सकेंगे, इसी कारण साधकोंको महर्षियोंने साधुसग और तीर्थसेवाका उपदेश किया है और इस कारण ही अन्य देश वासियोंको उन्होंने साधनकेलिये भारतवर्षका आश्रय लेनेकी आज्ञा दी है।

भारतको प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठा भारतवर्षमें ही सम्भव है, भारतवर्षकी प्रकृति पूर्ण है, इस कारण वह धर्म्मविस्तारकी आदि भूमि समझी जाती है; भारतवर्षको प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही यहाँकी स्त्रियाँ शारीरिक और मानसिक पूर्णताको प्राप्त करके जगत्‌में अतुलनीय हो रही हैं; उनकी प्रकृति पूर्ण होनेके कारणही वे सतीत्व, शीलता, लज्जा, पतिभक्तिकी पूर्णता अर्थात् पतिके लिये ही जीवन धारण करना, वात्सल्यस्नेहकी पूर्णता इत्यादि स्त्री प्रकृति-उपयोगी सद्‌गुण युक्त हुआ करती हैं; भारतवर्षकी प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही यहाँके पुरुष स्वभावसे ही प्रायः दयालु, सुशील, शान्तिप्रिय और धर्म्म परायण हुआ करते हैं; भारतवर्षकी प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही सनातन वैदिकधर्म्मकी शिक्षासे वहुदेशव्यापी बौद्धधर्म्म और

बौद्धधर्म्मकी शिक्षासे ईसाई धर्म्म और पुनः उससे ही इस्लाम धर्म्मकी वृद्धि होते हुए समस्त संसारमें नाना धर्म्म विस्तृत हो गये हैं। प्रकृतिकी पूर्णताका प्रत्यक्ष प्रमाण शरीरकी पूर्णता है, शरीरकी पूर्णताका प्रत्यक्ष प्रमाण मानसिक पूर्णता है और मानसिक पूर्णताका प्रत्यक्ष प्रमाण धर्म्मकी पूर्णता है। धर्म्म राज्यमें तथा आध्यात्मिक जगत्में भारतवर्षने जितनी उन्नति की है, धर्म्म जगत्में भारतवर्षने जितना अन्वेषण किया है, उतना न तो और किसी देशने किया है और न भविष्यत्में करनेकी आशा है।

भारतवर्षके विषयमें कहा गया है कि:—

मन्ये विधात्रा जगदेककाननम्,
विनिर्मितं वर्षमिदं सुशोभनम्।
धर्माख्यपुष्पाणि कियन्ति यत्र वै,
कैवल्यरूपं च फलं प्रचीयते॥

भारतवर्ष भगवान्का बनाया हुआ रमणीय उद्यान है, जिसमें धर्म-रूपी फूल और मुक्तिरूपी फल उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार सायन्स और शिल्पकलाकी उन्नतिसे आधिभौतिक उन्नति समझी जाती है, उसी प्रकार ज्ञान और आत्मतत्त्वविज्ञानकी उन्नतिसे आध्यात्मिक उन्नति समझी जाती है। प्राचीकालमें भारतीय आर्यजाति आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठा तक पहुंच गयी थी, इसको सभी निरपेक्ष लोग स्वीकार करते हैं। जिस गंभीर आत्मतत्त्वकी गवेषणामें प्लेटो और साक्रेटिस जैसे मनीषी थक गये हैं और स्पेन्सरने ईश्वर तत्त्व जानना मेरी बुद्धिसे अतीत है—ऐसा कह दिया है, वहाँ पर अपनी सूक्ष्म बुद्धि और अतींद्रिय दृष्टिको दौड़ाकर आत्मतत्त्वका पूर्ण पर्य्यवेक्षण करना प्राचीन आर्य्योंकी ही महती शक्तिका फल है, जिसके कारण केवल भारतवर्ष ही नहीं, समस्त संसार उनका ऋणी रहेगा। पाश्चात्य दार्शनिक-विज्ञान और आर्य्यजातिके दार्शनिक-विज्ञानकी परस्पर तुलना करनेसे संक्षेपतः यही कहना यथार्थ होगा कि, जहाँ पर अन्य देशोंका विज्ञान समाप्त हुआ है, वहाँसे आर्यजातीय दार्शनिक

विज्ञान प्रारम्भ होकर अनन्त ज्ञान समुद्रमें जाकर विलीन हुआ है। ऐसी आध्यात्मिक उन्नति जिस देशके पुरुषोंमें हो सकती है, वह देश पूर्ण शक्तिसे भरा हुआ है, इसमें सन्देह ही क्या है ?

जिसप्रकार ज्ञानकी पूर्णतासे पुरुषकी पूर्णता और मुक्ति होती है; उसी प्रकार पातिव्रत्यकी पूर्णतासे स्त्रीकी पूर्णता और मुक्ति होती है, इसलिये जिस देशकी स्त्रियोंमें सतीधर्मकी पूर्णता देखनेमें आती है, वही देश पूर्णोन्नत है, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है। समस्त पृथ्वीमें केवल आर्य-माता भारतभूमि ही सतीत्वकी पूर्णताद्वारा विभूषित हुई थी, इस बातको सभी लोग एकवाक्य होकर स्वीकार करेंगे। आर्य्यरमणीका जीवन अपने सुखकेलिये नहीं, किन्तु पति-देवताकी पूजाकेलिये ही है इसलिये पति-देवताका देहान्त हो जानेपर आर्य्यरमणी एकाकिनी संसारमे नहीं रह सकती; क्योंकि देवताका विसर्जन होनेपर नैवेद्यकी आवश्यकता क्या है ? इसलिये आर्य्यशास्त्रमें सतीकेलिये मृतपतिके साथ सहमृता होनेतककी आज्ञा दी गयी है। प्राचीन कालमें इस प्रकारकी आज्ञाका पूर्णतया प्रतिपालन हुआ करता था। ऋग्वेदके दशम मण्डलमें अष्टादश सूक्तके अष्टम ऋक्में सकुशक ऋषिने पति-वियोग-कातरा सहगम-नोद्यता किसी स्त्रीको लक्ष्य करके कहा है :—

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकमितासुमेतमुपशेष एहि।
हस्ताग्राभस्य दिधिषोस्त्ववेदं पत्युर्जनित्यमभिसम्बभूवा ॥

हे स्त्री ! संसारकीओर लौट जाओ, उठो, तुम जिसकेसाथ सोने जा रही हो, वह मृत हो गया है, इसलिये उसकेसाथ तुम्हारा गर्भा-धानादि कार्य समाप्त हो गया है। अब घरमें बालबच्चोंको लेकर रहो। इस मन्त्रसे यही भावार्थ निकलता है कि, स्त्री सहमरणमें जाना चाहती है और लोग उसे निवृत्त कर रहे हैं। राजा पाण्डुकी मृत्युसे माद्रीका सहमरण इत्यादि आर्यरमणियोंको पूर्णताके ज्वलन्त दृष्टान्त यहाँ पर ही मिलेंगे। अतः प्राचीन आर्यजातिकी शारीरिक पूर्णता और भारत-वर्षकी प्रकृतिकी सर्वविध पूर्णता सर्व-सम्मत तथ्य है।

आर्यजातिका नैतिक जीवन

(४)

प्राचीन आर्य-जातिमें मानसिक उन्नति कितनी हुई थी, आर्य-जातिके नैतिक जीवनपर पर्यालोचना करनेसे उसका स्वरूप पूर्णतया प्रकट होगा। जहाँपर हरिश्चन्द्र जैसे महात्मा सत्यरक्षाकेलिये राज्य, धन स्त्री, पुत्र तकको उत्सर्ग करके चाण्डालका दासत्व कर सकते हैं, जहाँ-पर शरणागत पक्षीतककी रक्षाकेलिये शिविराजा अपने शरीरको खण्ड-खण्ड करके काट दे सकते हैं, जहाँपर आसुरी शक्तिका दमन करनेकेलिये महर्षि दधीचि अपनी अस्थितकको प्रदान कर सकते हैं, जहाँपर मयूर-ध्वज जैसे गृहस्थ अतिथिसत्कारकी पराकाष्ठाका आदर्श स्थापन करनेके लिये स्त्री पुरुष मिलकर अपने बालकके शरीरके सिरसे पैरतक दो दो टुकड़े कर सकते हैं, जहाँपर पितृ–सत्य–प्रतिपालनके लिये श्रीरामचन्द्र जटा धारण करके वनवासी हो सकते हैं, जहाँपर पिताकी तृप्तिके लिये भीष्मदेव आजीवन ब्रह्मचारी रह सकते हैं, जहाँपर समस्त राज्यसे च्युत होकर वनवास क्लेश सहन करनेपर भी महाराज युधिष्ठिर सत्यकी मर्य्यादाको नहीं भूल सकते हैं, वहाँकी जातियोंमें मानसिक, नैतिक और चरित्र सम्बन्धीय कितनी उन्नति हुई थी, यह सामान्य पुरुष भी विचार कर निर्णय कर सकेंगे। प्राचीन आर्य्यजातिकी उदारता, सरलता, सत्य-प्रियता, साहसिकता, शिष्टाचार, सदाचार, दया, परोपकारवृत्ति आदि सभी दैवी सम्पत्तियाँ संसारमें आदर्श रूप हैं।

इस विषयमें पूर्व कथित 'एतद्देशप्रसूतस्य' आदि केवल मनु कथित प्रमाण ही नहीं अधिकन्तु अनेक विदेशीय भारत-भ्रमणकारी लोगोंने भी आर्य्यजातिके अपूर्व चरित्र और मानसिक उन्नतिके विषयमें हाथ उठा-कर वार-वार ही ऐसा ही कहा है।

पाश्चात्य पण्डित चसारने सत्यधर्म्मको सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ कहा है और हिन्दू शास्त्रमें—

"नाऽस्ति सत्यात्परो धर्म्म:"

कहकर सत्यकी ही प्रतिष्ठाकी गयी है। आर्य्यजातिको सत्यवादिताके विषयमें द्वितोय शताब्दिके ऐतिहासिक ऐरियन[1] साहबने भो कहा है—"मैंने कभी किसी आर्य्यको मिथ्या कहते हुए नहीं सुना है।" ग्रीक ऐतिहासिक ष्ट्रावो[2] ने कहा है :—"आर्य्यगण ऐसी उत्तम प्रकृतिके मनुष्य हैं कि, चोरीके भयसे उनके दरवाजेपर ताला नहीं लगाना पड़ता और उन्हें किसी कार्य्यकेलिये इकरारनामा नहीं लिखना पड़ता।" चीन देशीय प्रसिद्ध भ्रमणकारी हुयेनसांग[3] ने कहा है—"सच्चरित्रता वा सरलताकेलिये आर्यजाति चिरकालसे प्रसिद्ध है। वे लोग कभी अन्यायसे किसीकी धनसम्पत्ति आत्मसात् नहीं करते और न्यायको मर्यादा-रक्षार्थ त्याग स्वीकार करनेमें कुछ भी कुण्ठित नहीं होते"। त्रयोदश शताब्दिके भ्रमणकारी मार्कोपोलोने[4] भारतवर्षीय ब्राह्मणोंकी सत्यनिष्ठाको देखकर कहा था कि, पृथ्वोमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके लोभसे ब्राह्मण मिथ्या भाषण कर सकता है। विचारपति कर्नल शिलम्यान्[5] साहबने कहा है :—"मैंने सैकड़ों मुकद्दमोंका विचार करते हुए देखा है कि, जहाँपर एक शब्द मिथ्या बोलनेसे किसीकी प्राणरक्षा वा सम्पति रक्षा आदि हो सकती है, वहाँ पर भी वादो या प्रतिवादोके वशवर्त्ती हो आर्य-सन्तानने मिथ्या कहना पसन्द नहीं किया है"। और लोगोंकी तो बात ही क्या है, भारतवर्षके प्रथम गवर्नर जनरल वारेन

१. Indico, cap. XII. 6.

२. Strabo, lib XV. P. 488.

३. Vol. II. P. 83.

४. Marco. Polo. ed. H. yule vol. II. 350

५. Max Muller's India what can it teach us.

हेस्टिङ्गस् साहबने भी पार्लियामेन्टमें साक्षी प्रदानके समय हिन्दुओंको विनयी, परोपकारी, कृतज्ञ, विश्वासी और स्नेहशील कहकर प्रशंसा की है। अध्यापक यूलियम्स्[१] साहबने कहा है :—"यूरोपकी कोई भी जाति भारतवासियोंकी तरह धर्मपरायण नहीं है"। प्रोफेसर मैक्समूलरने कहा है:—आर्यजातिमें सत्यप्रियता ही सबसे उत्कृष्ट जातीय लक्षण है। किसीने इस जातिको "असत्य" का लाञ्छन नहीं लगाया है"। ग्रीस देशके प्रसिद्ध सिकन्दर शाह भारतसे जाते समय मेगास्थिनीज नामक जिस दूतको यहांकी रीति नीतिका पर्यवेक्षण करनेकेलिये छोड़ गये थे, उसने आर्यजातिके विषयमें कहा है :—"आर्यजातिमें दासत्वभाव बिलकुल नहीं है, इनकीस्त्रियोंमें पातिव्रत्य और पुरुषोंमें वीरता असीम है। साहसिकतामें आर्यजाति पृथ्वीभरकी अन्य जातियोंसे श्रेष्ठ है, परिश्रमी, शिल्पी और नम्रप्रकृति है। यह कदापि अदालतोंमें मुकद्दमें नहीं करती और शान्तिके साथ परस्पर मिलकर वास करती है"। विख्यात ऐतिहासिक अबुलफजलने[२] कहा है—"हिन्दुगण धर्मपरायण, मधुर-स्वभाव, अतिथिसेवी, सन्तोषी, ज्ञानप्रिय, न्यायशील, कार्यदक्ष, कृतज्ञ, सत्यपरायण और बहुत ही विश्वस्त होते हैं"। इस प्रकार प्राचीन इतिहासोंकी चर्चा करनेसे प्राचीन आर्यजातिके मधुर और पूर्ण चरित्रका परिचय मिलता है। जिस समय पृथिवीकी अन्यान्य जातियां असभ्यताके घोर अन्धकारमें डूबी हुई थीं, उस समय भारतवर्षमें सभ्यताकी ज्योति सर्वत्र फैली हुई थी और उसी ज्योतिको लेकर ही मनुजीके कथनानुसार पृथ्वीकी अन्यान्य जातियां सभ्यता और उन्नतिको प्राप्त हुई हैं। दृष्टान्तरूपसे समझ सकते हैं कि, खृष्टजन्मके ५५ वर्ष पूर्व जब पराक्रान्त जुलियस सीजर ब्रिटेनद्वीपपर अधिकार विस्तार करनेको आये थे,

१. **Modern India and the Indians.**

२. **Hunter's Gazetteer.**

३. **Tod's Rajasthan.**

तव उन्होंने यह देख कर दुःख किया था कि, वे जहाँपर राजविस्तार करनेको आये हैं, वहाँके लोग पशुवत् हैं। कच्चा मांस खाना, भूगर्त्तमें रहना, वृक्ष शाखाओंमें विहार करना, विविध रङ्गोंसे शरीरको रञ्जित करना ये सव उनके आचार हैं। उनकी भाषा भी पशुओंकी तरह है; परन्तु जव वीरचूड़ामणि सिकन्दर शाह जुलियस सीजरके तीन सौ वर्ष पहले भारत विजयार्थ पञ्जाव आये थे, तव वे यह देखकर चकित हुए थे कि अपने देशमें रहते समय जिस आर्यजातिको वे हीनवीर्य तथा असभ्य समझा करते थे, वह जाति ग्रीक जातिकी शिक्षागुरु है। उन्होंने राजा पोरसके साथ संग्राममें समझ लिया था कि, आर्यजातिके समान वीर जाति संसारमें कोई नहीं है। उनका वीरत्व, वेष, भूषण, स्वाभाविक अपूर्व सौन्दर्य, दयाशीलता, निर्भयता, आतिथ्य वृत्ति, धर्मभाव आदि गुणावली मनोमुग्धकर है। उनकी भाषा मन्दाकिनीके मृदुमन्दनादकी तरह अति मधुर है। जर्मन देशीय पण्डित ज्योर्णस जार्णा[1]ने कहा है :— "धर्म तथा सभ्यताके प्राचीनत्वके विचारसे पृथ्वीकी कोई भी जाति आर्य जातिकी समकक्ष नहीं है"। प्रसिद्ध पण्डित कोलव्रुकने कहा है "इसी देशसे ज्ञान तथा सभ्यताकी ज्योति पहले ग्रीसमें गयी था। ग्रीससे रोममें और रोमसे वही ज्योति रोमन जातिके प्रवल प्रतापके समय रोमके द्वारा समस्त यूरोपमें विस्तृत हुई थी।" इन सव प्रमाणोंसे भारतवासी आर्यजातिकी अपूर्व सभ्यता तथा उनका नैतिक जीवनके सर्वोच्च पदपर प्रतिष्ठित होना सिद्ध हो जाता है।

—०—

1. Theogony of the Hindus.

आधिपत्य और वाणिज्यविस्तार

(५)

पूर्वकथित सर्वतोमुखिनो नैतिक उन्नतिकेसाथ सर्वतोगामिनी व्यापकताके भी भूरि भूरि प्रमाण आर्यजातिमें देखनेमें आते हैं। प्राचोन कालमें आर्यजाति देशविजय, राज्यविस्तार, देशपर्यटन, उपनिवेशस्थापन, वाणिज्यवृद्धि आदिकेलिये पृथ्वीके सब देशोंमें ही गमन करती थी, इसका प्रमाण पश्चिमी और एतद्देशीय सभी प्रत्नतत्त्वविज्ञ पण्डितोंने दिया है। ऐतरेय ब्राह्मणमें राजा सुदासके विषयमें लिखा है कि, उन्होंने ससागरा पृथ्वीको जय करके सर्वत्र ही अपना अधिकार विस्तार किया था। एल्फिन्स्टन और ष्टोन साहबने कहा है कि, पारस्य देशका बहुतसा अंश प्राचोनकालमें हिन्दुओंके अधीन था। कर्नल टाड साहबने कहा है, मुसलमानी राज्यके पहले हिन्दुओंका अधिकार मध्यएशियाके अनेक स्थानोंमें था। वेबर साहबने अपने प्रणीत Indian Literature नामक ग्रन्थमें अनेक प्रमाणोंकेद्वारा बताया है कि, प्राचोन कालमें ग्रोस और रोमके साथ आर्यजातिका बहुत ही सम्बन्ध था। हिन्दू राजाओंके प्रासादोंमें ग्रोक स्त्रियाँ दासोरूपसे रहा करती थीं और वहाँके दूत यहाँ और यहाँके दूत वहाँ प्रायः यातायात करते थे। भारतवर्षकी प्रकृति पूर्ण होनेसे आदि सृष्टि यहाँ ही हुई थी, इसका विज्ञान ग्रन्थान्तरमें कहा जायगा। पृथिवोकी आदिजाति आर्यगण 'पृथिवीपाल' थे, इसका भो प्रमाण बहुत है। यही पृथिवोपालक आर्यजाति प्राचोन कालमें पृथिवी भरमें विस्तृत होकर राज्यविस्तार और उपनिवेशस्थापन करती थी, जिसका चिह्न आज भो सर्वत्र विद्यमान है। दृष्टान्तरूपसे थोड़ासा वर्णन किया जाता है।

पञ्चदश शताब्दिके बोचमें कालम्बसकेद्वारा अमेरिकाका आविष्कार हुआ था। इस बातको पढ़कर अर्वाचीन हिन्दू बहुत ही आश्चर्यान्वित

होते हैं; परन्तु उनके पितापितामह आदिने पञ्चदश शताब्दिसे कितने सहस्राब्द पहले अमेरिकाका आविष्कार किया था, उसकी खबर अनुसन्धित्सु पाश्चात्य पण्डितोंको है। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें लिखा है कि, जिस समय यूरोपीय जातिने अमेरिकामें प्रथम उपनिवेशस्थापन किया था, उस समय तक वहाँपर प्राचीन हिन्दुओंका आचार व्यवहार विद्यमान था। यद्यपि भारतके साथ सम्बन्ध विच्छिन्न होनेसे वहाँके भारतवासियोंके आचारादिमें अनेक फेर बदल हो गये थे, तथापि आर्य आचारादिका चिह्न एकदम ही लुप्त नहीं हो गया था। जर्मनीके प्रसिद्ध-दार्शनिक और परिभ्रमण करनेवाले वैरन हाम्बोल्ट[१] साहबने कहा है कि, "अमेरिकामें अब भी हिन्दुओंका परिचय चिह्न विद्यमान है।" पेरुदेशके लोगोंके आचारोंके विषयमें चर्चा करते समय मि. पोककने[२] कहा है कि, "पेरुवासियोंके पितृपुरुषगण किसी समय भारतवासियोंके साथ सम्बन्धयुक्त थे।" मि. हार्डिने[३] कहा है कि, "अमेरिकामें जो प्राचीन प्रासाद देखनेमें आते हैं, वे सब भारतवर्षके मंदिर-शिखरोंकी तरह हैं।" मि० स्कयारने[४] कहा है कि, "दक्षिण भारत और भारतीय द्वीपोंमें जो बौद्धमन्दिर देखनेमें आते हैं, मध्य अमेरिकाकी अनेक अट्टालिकायें उसीके अनुकरण पर बनी हुई हैं।" प्रेस्कट्[५] और हेल्प् साहबने अपने अनेक ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर लिखा है कि, "भारतीय देवदेवियोंके अनुकरणपर ही अमेरिकामें देवदेवियोंकी मूर्त्तियाँ बनायी जाती थीं और उसी प्रकारसे पूजादि हुआ करती थी।" भारतवर्षकी तरह पृथ्वीपूजा वहांपर प्रचलित थी। भारतवर्षमें श्रीकृष्णपदचिह्न, श्रीवुद्ध-

१. Hindu Mythology.

२. India in Greece.

३. Eastern Monachism.

४. Serpent Symbol.

५. मेक्सिको विजय; स्पेनीयगण द्वारा अमेरिकाका अधिकार।

पदचिह्न[1] और श्रीदत्तात्रेय आदिके पदचिह्नोंकी पूजाकी तरह मेक्सिकोमें भी 'कोयेट्जालकोटल्' नामक देवताके पदचिह्नकी पूजा होती थी। भारतवर्षकी तरह वहांपर भी सूर्य और चन्द्रग्रहणके समय उत्सव होता था। यहांपर जिस प्रकार राहु द्वारा चन्द्रसूर्यग्रासकी कथा प्रचलित है, वहांपर भी ऐसी ही 'माल्य' नामक दैत्य द्वारा सूर्यचन्द्रग्रासकी किम्वदन्ती प्रचलित थी। मेक्सिको देशमें हाथीके शिरसे युक्त एक नरदेवताकी पूजा होती थी। बैरन हम्बोल्ट साहबको सम्मति है कि, उस देवताके साथ हिन्दुदेवता गणेशका सम्पूर्ण सादृश्य मिलता है। भारतवर्षमें 'दशहरा' उत्सवकी तरह मेक्सिकोमें भी प्रतिवर्ष राम सीताके नामसे उत्सव होता था। सर विलियम जोन्स्ने कहा है कि, "यह एक प्रख्यात विषय है कि, पेरुदेशके इन्सेस् लोग अपनेको सूर्यवंशीय कहते हुए गौरव समझते थे और उनका प्रधान पर्वोत्सव रामसीताका ही उत्सव था।" इसीसे सिद्ध होता है कि, जिस हिन्दुजातिने एशियाके देशदेशान्तरमें जाकर रामसीताका इतिहास तथा आर्य आचारोंका प्रचार किया था, उसीने दक्षिण अमेरिकामें जाकर उपनिवेश स्थापन भी किया था। इसके सिवाय युगान्तर, खण्डप्रलय, कूर्मपृष्ठपर पृथिवीधारण, सूर्यपूजा आदि कई एक विषयोंमें भारतवर्षके साथ अमेरिकाका सादृश्य था, इसका परिचय मिलता है, जिनसे प्राचीन आर्यजातिकी व्यापकता सिद्ध होती है। कितने ही पश्चिमी पण्डितोंने तो यह कहा है कि, पृथिवीकी सभी जातियोंकी उत्पत्ति आर्यजातिसे ही हुई है। आर्यजाति ही सब देशोंमें भिन्न-भिन्न समयपर जा बसी है, जिससे देश, काल और आचार भेदानुसार उनमें अनेक भेद पड़ गये हैं। आचार आदिकी भ्रष्टताके कारण आर्य पदवीसे च्युत होकर वे सब अन्यजाति कहलाने लग गये हैं। मि० पोकक साहबने कहा है कि, "पञ्जाबके रास्तेसे असख्य हिन्दु यूरोप

---

१. Mythology of Ancient America.

२. Asiatic Researches.

और एशियाके कई स्थानोंमें गये थे और वे उन्हीं देशोंके अधिवासी बन गये हैं।" प्रोफेसर हीरेनने कहा है कि "अन्तर्विवाद अर्थात् अपने ही समाजमें लड़ाई झगड़ेके कारण आर्यगण अन्यदेशोंमें जा बसे हैं। ऐसा न माननेपर भी ऐसा तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि, भारतवर्षमें हिन्दुओंकी अगणित विशाल जातियोंके वसनेकेलिये यथेष्ट स्थान नहीं था, इसलिये अन्यान्य अनेक देशोंमें प्राचीन हिन्दुओंने उपनिवेश स्थापन किये थे, जिससे संसारभरका विस्तार आर्यजातिसे ही हुआ है।" मनुसंहितामें क्रियालोप और वेदपाठके अभावसे अनेक क्षत्रियजाति किस प्रकार पतित होकर काम्बोज, शक, यवन, खश, पारद आदि नीचजाति बन गयीं थीं, इसका वर्णन किया गया है। महाभारतके अनुशासनपर्व और शान्तिपर्वमें भी ऐसी अनेक जातियोंका वर्णन देखनेमें आता है, जो आर्यजातिसे ही क्रियालोपके द्वारा बन गयीं हैं। यथाः—

शका यवनकाम्बोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥
द्राविडाश्च कलिन्दाश्च पुलिन्दाश्चाप्युशीनराः।
कोलिसर्पा माहिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः॥
मेकला द्रविडा लाटाः पौण्ड्राः कोन्वशिरास्तथाः।
शौण्डिका दरदादर्वाश्चौराः शर्वरबर्बराः॥
किराता यवनाश्चैव तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥

(अनुशासन पर्व)

वेदाचारके खण्डित होनेसे शक, यवन आदि जातियाँ क्षत्रिय जातिसे वृषल बन गई थीं। इसी प्रकार शान्तिपर्व—

यवनाः किराता गांधाराश्चीनाः शर्वरबर्बराः।
शकास्तुषाराः कंकाश्च पन्हवाश्चान्ध्रमद्रकाः॥

पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।
ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवः ॥
कथं धर्माश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः ॥

यवन, किरात, गान्धार आदि जो अनेक जातियाँ चतुर्वर्णसे बन गयीं हैं, उनका धर्म क्या होगा और उनपर शासन भी किस प्रकारसे होगा ऐसा प्रश्न हो रहा है। इसके द्वारा प्राचीन कालमें आर्यजाति पृथिवीकी अन्य सब जातियोंपर आधिपत्य करती थी—यह भी सिद्ध होता है। मनसियर डेलवो साहबने कहा है कि, हजारों वर्ष पहले जो सभ्यता गङ्गाके तटपर विस्तारको प्राप्त हुई थी, उसीका प्रभाव आजतक यूरोप और अमेरिका भोग कर रहे हैं। और समस्त सभ्य जगत्की यश दिशाओंमें वही प्राचीन आर्यजातीय सभ्यता विस्तृत हो गयी है। प्राचीन आर्यगण इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशोंमें उपनिवेश स्थापन करनेकेलिये स्थलपथ और जलपथ दोनोंके द्वारा ही सर्वत्र गमनागमन करते थे। यवद्वीप, वोर्नियो आदि आदि अतिक्रम करके प्राचीन हिन्दुगण अमेरिका जाते थे, ऐसे प्रमाण अनेक स्थानोंमें पाये जाते हैं। पाश्चात्य पण्डितोंकी आलोचना द्वारा सिद्ध हुआ है कि वेरिङ्ग प्रणाली (Strait) का अस्तित्व पहले नहीं था। उस समय रूस देशके उत्तरपूर्व प्रान्तीय स्थानोंके साथ उत्तर अमेरिकाके अलास्का देशका संयोग था, जिससे भारतवासी चीन, मंगोलिया और साइबेरिया होकर अमेरिका जाया करते थे। बौद्धधर्मके प्रादुर्भावके समय बौद्ध मिशनरीगण अमेरिकामें जाया आया करते थे, चीन देशके इतिहासमें इसका प्रमाण मिलता है। प्राचीन मिश्र या वर्तमान अफ्रिका देशमें प्राचीन आर्योंने जो उपनिवेश स्थापन किया था, उसका वृत्तान्त इतिहासमें कहा गया है। कई एक आचारभ्रष्ट क्षत्रियोंको राजा सगरने समाजच्युत किया था वे ही शक, यवन और पारद कहे जाते हैं। भारतवर्षको छोड़कर इन

लोगोंने नानादेशोंमें जाकर उपनिवेश स्थापन किये थे। किसी किसी की सम्मति है कि, इन भ्रष्ट क्षत्रियोंमेंसे 'पारद' लोगोंके द्वारा ही 'पारस्य' देशका नामकरण हुआ है और किसी किसीके मतसे परशुरामके अनुचर-गणके द्वारा ही पारस्य देशका नामकरण हुआ है। श्रीरामचन्द्रके किसी वंशजके द्वारा रोमराज्यकी प्रतिष्ठा और मगधके राजाओंकेद्वारा ग्रीस-राज्यका प्रतिष्ठा अनेक पाश्चात्य पण्डितोंको गवेषणाके द्वारा सिद्ध हुई है। प्राचीन ग्रीसका नाम यवनराज्य था। जर्मन देशमें मनुके वंशजोंने उपनिवेश स्थापन किया था। तुरस्क और उत्तर एशियामें हिन्दुओंका ही आधिपत्य था, इन बातोंके अनेक प्रमाण मिलते हैं। चीन देशमें आर्योंका आधिपत्य जमा था, इसका वृत्तान्त चीन देशीय धर्म और जातितत्त्वके देखनेसे निश्चित होता है। अब भी चीन देशके लोग अपनेको आर्यवंशीय कहकर परिचय देते हैं। प्राचीन ब्रिटेन द्वीप भी किसी समय आर्योंका अधिकारभुक्त था, आजकल अनेक पाश्चात्य पण्डितोंको गवेषणाके फलसे ऐसा ही स्वीकार करना पड़ता है। वे कहते हैं कि प्राचीन ब्रिटेनके 'द्रुइद' पुरोहितोंकी उत्पत्तिके मूलमें आर्यब्राम्हण अथवा बौद्धधर्मीय याजकोंका प्राधान्य अवश्य ही विद्यमान था। जम्बु, प्लक्ष, पुष्कर, क्रौञ्च, शक, शाल्मली और कुश इन सात द्वीपोंकी प्रसङ्गपर चर्चा करके कर्नल विलफ़ोर्ड आदि प्रमुख पाश्चात्य पण्डितोंने जो सिद्धान्त किया है, उससे प्रमाणित होता है कि प्राचीन कालमें समस्त पृथिवी ही आर्यजातिकी अधिकारभुक्त थी। कालकी कुटिलगतिसे प्राचीन आर्योंके अधिकारभुक्त अनेक स्थानोंके नाम परिवर्तन होनेसे आर्यजाति-की अधिकार-सीमाका पता ठीक २ नहीं चलता; परन्तु थोड़ा ही ध्यान देकर विचार करनेसे आर्यजातिके 'पृथिवी पाल' लक्षणकी चरितार्थता पूर्णतया प्रतीत हो जायगी। आर्यजातिका अधिकारभुक्त प्राचीन गान्धार वर्तमान कन्दाहार है। प्राचीन काम्बोज वर्तमान काम्बोडिया है। प्राचीन पन्हव और पारद वर्तमान पारस्य है। प्राचीन यवन आधुनिक ग्रीस है। प्राचीन दरद वर्तमान चीन है। प्राचीन खस वर्तमान पूर्व

यूरोप है। इस तरह प्राचीन देशोंकी नामावलीका पता लग सकता है, जिससे आर्यजातिका समस्त पृथिवीपर अधिकार सिद्ध होता है। भेद इतना ही है कि, आर्यजाति राज्यजयके अनन्तर वहां अपना साक्षात् राज्यस्थापन करना अपने सिद्धान्त और अभ्यासके विरुद्ध समझती थी। विजय करना यद्यपि हिन्दुसम्राट्का एक प्रधान धर्म समझा जाता था, यद्यपि अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञ आदिका साक्षात् सम्बन्ध पृथ्वीके दूर २ देशोंके जय करनेके साथ रक्खा गया था और यद्यपि प्रबल पराक्रान्त हिन्दुसम्राट्गण पृथ्वीके दूरवर्ती नाना देशोंको जय करते थे, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं; तथापि उनका वह जयकार्य धनलोभ या ऐश्वर्य-लोभसे नहीं हुआ करता था। आर्यशास्त्रके अनुसार ब्राह्मणधर्म मुक्ति प्रधान, क्षत्रियधर्म धर्मलक्ष्यप्रधान, वैश्यधर्म धनलक्ष्यप्रधान और शूद्रधर्म कामलक्ष्यप्रधान है, इस कारण क्षत्रियधर्मके विचारसे विदेशीय राजाको जय करते थे। वहां कदाचार और अधर्म दूर करनेकी प्रतिज्ञा वहाँके राजासे लेकर धनका लोभ कुछ भी न रखकर केवल अपनी मर्यादा और गौरवको बढ़ाकर उस राज्यको स्वाधीन कर लौट आते थे। केवल सम्राट्का प्रभाव अन्य देशके नरपतियोंपर रहता था। अन्य-देशकी आन्तरिक व्यवस्थामें वे कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करते थे। यही कारण है कि, प्राचीन समयमें छोटे बड़े अनेक राजा होते थे और सभी अन्तरिक प्रबन्धके संबंधमें स्वाधीन होते थे। फलतः केवल धर्मलक्ष्य होनेके कारण क्षत्रिय सम्राट्गण अन्य देशोंमें अपना न तो धनका सम्बन्ध रखते थे और न स्थायी अनुशासन रखते थे। अब भी यव और बाली द्वीपमें जो लाखों हिन्दु अधिवासी हैं, वे काम्बोडियाके अपूर्व मन्दिरोंके ध्वंसावशेष और पृथिवीके प्रधान अंशोंमें बौद्ध धम्मका विस्तार, आर्य्यजातिकी सर्वत्र व्यापकताको सिद्ध कर रहे हैं।

प्राचीन कालमें इस प्रकार पृथ्वीके सर्वत्र जाने आनेकेलिये आर्य-गणके पास यान आदिका भी अभाव नहीं था। प्राचीन इतिहास पुराणादिमें जो द्रुतगामी रथ, पोत आदिका प्रमाण मिलता है, जिनके

द्वारा थोड़े समयमें ही स्थल, जल और आकाश मार्गमें बहुत दूर तक जानेकी बात बतायी गयी है, उनके द्वारा आधुनिक जहाज, बेलून, यारोप्लेन आदिका अस्तित्व सिद्ध होता है। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें ३७ सूक्तकी प्रथम ऋक् यह है:—

क्रीलं वः शर्द्धोमारुतमनर्वाणं रथे शुभम्।
कण्वा अभिप्रगायत।

इसमें 'अनर्वाणम्' शब्दका अर्थ 'अश्वरहित' है और 'मारुत' शब्दका तात्पर्य्य मरुत्दत्त या बाष्पदत्तबलसे है। अतः पूरे ऋक्का यह अर्थ निकलता है कि हे कण्वगोत्रोत्पन्न महर्षिगण! जिस प्रकारसे वाष्पके प्रभावसे अश्वरहित रथ चल सकता है, उसकी शिक्षा हमें दीजिये। अतः इस ऋक्के द्वारा अश्वरहित बाष्पीय रथ प्राचीन कालमें था, ऐसा सिद्ध हुआ। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ९७ सूक्तमें लिखा है :—

द्विषो नो विश्वतो मुखाति नावेव पारय।
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षाः स्वस्तये॥

हे विश्वतोमुख देव! तुम हमारे शत्रुओंको जहाजसे पार करनेकी तरह दूर भेज दो और हमारे कल्याणकेलिये हमें जहाजके द्वारा समुद्र पार ले चलो। इस प्रकार और भी अनेक मन्त्रोंकेद्वारा प्राचीन कालमें अर्णवपोत आदिके भी अस्तित्वका प्रमाण मिलता है। केवल समस्त पृथिवीपर अधिकारविस्तारकेलिये ही नहीं, अधिकन्तु वाणिज्य आदिके-लिये भी प्राचीन आर्यगण पृथिवीमें सर्वत्र जाया आया करते थे। ऋग्वेदके चतुर्थ मण्डलके ५५ सूक्तमें धनलाभेच्छु वणिक्गणकी समुद्र-यात्राका वृत्तान्त लिखा हुआ है। प्रोफेसर म्यावस डंकारने कहा है कि, "खृष्टजन्मके २००० वर्ष पहले आर्यजाति जहाज प्रस्तुत करना जानती थी और समस्त पृथिवीके साथ उसका वाणिज्यकार्य चलता था।" प्रोफेसर हीरेन साहबने कहा है कि "प्राचीन हिन्दुगण एक प्रकारका

जलयान प्रस्तुत करना जानते थे, जिसपर चढ़कर करमण्डलतट, गङ्गा-तटस्थ अनेक देश, ग्रीस और मछलिपट्टनके अनेक प्रदेशोंकेसाथ वे वाणिज्य करते थे।" हिन्दुशास्त्रमें भी इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि, प्राचीन आर्यगण काष्ठविज्ञानको भली प्रकारसे जानते थे और उसी विद्याकी सहायतासे उत्तम और दृढ़ जहाज प्रस्तुत करके देशविदेशमें जाया करते थे। वृक्ष-आयुर्वेदके मतानुसार काष्ठ भी चार वर्णोंके होते थे, यथाः—

> लघु यत्कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रह्मजाति तत्।
> दृढांगं लघु यत्काष्ठमघटं क्षत्रजाति तत्॥
> कोमलं गुरु यत्काष्ठं वैश्यजाति तदुच्यते।
> दृढांगं गुरु यत्काष्ठं शूद्रजाति तदुच्यते॥
> लक्षणद्वययोगेन द्विजातिः काष्ठसंग्रहः॥

जो काष्ठ हलका, नरम और दूसरे काष्ठसे अच्छी तरह मिल सकता है, वही ब्राह्मणजातिका काष्ठ है। जो काष्ठ हलका और दृढ़ है और अन्य काष्ठसे मिल नहीं सकता, यह क्षत्रियजातिका काष्ठ है। नरम और भारीकाष्ठ वैश्यजातिका है और दृढ़ और भारी काष्ठ शूद्रजातिका है। दो जातिके काष्ठोंके गुणयुक्त काष्ठ द्विजातीय वर्णसंकर काष्ठ कहलाते है। पूर्वोक्त लक्षणानुसार चार वर्णोंके काष्ठ जलयान बनानेके काममें आते थे। भोजराजने उल्लिखित चतुर्वर्णके काष्ठोंमेंसे जहाज प्रस्तुत करनेके लिए कौन-कौन काष्ठ किस प्रकारसे उपयुक्त हो सकते हैं और काष्ठ द्वारा जहाज किस प्रकारसे बनाया जाना चाहिये सो वर्णन किया है, यथाः—

> क्षत्रियकाष्ठैर्घटिता भोजमते सुखसम्पदं नौका।
> अन्ये लघुभिः सुदृढैर्दधति जलदुष्पदे नौकाम्॥
> विभिन्नजातिद्वयकाष्ठजाता न श्रेयसे नापि सुखाय नौका।
> नैषा चिरं तिष्ठति पच्यते च विभिद्यते सरिति सज्जते च॥

भोजराजके अनुसार क्षत्रिय-काष्ठ-निर्मित जलयान ही सुख और धनका वेनेवाला होता है। अधिक जलमें तैरनेकेलिये भी इस प्रकार लघु और दृढ़काष्ठ-युक्त-यान ठीक होता है। वर्णसङ्कर काष्ठ अर्थात् विभिन्न दो जातियोंके काष्ठ द्वारा निर्म्मित जलयान कदापि मंगल और सुख देनेवाला नहीं होता, क्योंकि ऐसा यान बहुत दिनों तक काम नहीं दे सकता, शीघ्र ही सड़ जाता है, थोड़ा आघात पानेसे ही फट जाता है और समुद्रमें डूब जाता है।

युक्ति-कल्पतरुमें आकारके भेदके अनुसार जहाजोंके दस भेद बताये गये हैं। यथा:—

क्षुद्राथ मध्यमा भीमा चपला पटला भया।
दीर्घा पत्रपुटा चैव गर्भरा मन्थरा तथा॥

आकार भेदानुसार जलयानके दस भेद होते हैं। यथा:—क्षुद्रा मध्यमा, भीमा, चपला, पटला, भया, दीर्घा, पत्रपुटा, गर्भरा और मन्थरा ये सब भेद सामान्य जलयान अर्थात् नदीमें जानेवाले जलयानके हैं। इनके अतिरिक्त समुद्रमें जानेवाले अर्थात् विशेष दीर्घ जलयानके भी दस भेद हैं, यथा:—

दीर्घिका तरणिर्लोला गत्वरा गामिनी तरिः।
जंघाला प्लाविनी चैव धारिणी वेगिनी तथा॥

दीर्घिका, तरणि, लोला, गत्वरा, गामिनी, जंघाला, तरी, प्लाविनी, धारिणी और वेगिनी। महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है:—

ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा।
पर्थाना दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम्॥
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्।
शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विश्रम्भिभिः कृताम्॥

महात्मा विदुरजीने पाण्डवोंकी रक्षाकेलिये गङ्गातटपर ऐसे एक एक विश्वासी पुरुषोंसे अधिष्ठित जहाजको भेज दिया जिस जहाजमें सभी प्रकारके यन्त्र थे, ध्वजा थी और पवनवेगको सहन करनेकी भी शक्ति थी। रामायणके अयोध्याकाण्डमें लिखा है :···

नावां शतानां पञ्चानां कैवर्त्तानां शतं शतम्।
सन्नाद्धानां तथा यूनान्त्वित्यभ्यचोदयत्॥

शत्रुओंके पन्थारोध करनेकेलिये शत-शत कैवर्त्त युवक ५०० जलयानोंमें इधर-उधर छिपे रहे। ऐसे अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, प्राचीन कालमें आर्यगण जहाज आदि जलयान वनानेके कौशलको पूर्णतया जातते थे और इस प्रकार अर्णवपोत आदिमें चढ़कर दिग्विजय और वाणिज्य आदिके लिये समुद्रपथसे दूर-दूर देशोंमें यातायात करते थे।

वाणिज्यके विषयमें प्राचीन आर्य-इतिहासकी पर्यालोचना करनेसे पता लगता है कि, आज कलकी तरह प्राचीन हिन्दुजाति विदेशीय लोगों-के हाथमें समस्त वाणिज्य धनको सौंपकर दीन हीन भिखारी और पर-मुखापेक्षी नहीं हो गयी थी, किन्तु अपनी अनुपम वाणिज्य-समृद्धिकेद्वारा समस्त संसारकी अधिपति थी। प्राचीन कालमें भारत जो अतुल ऐश्वर्य सम्पन्न होनेके कारण स्वर्णभूमि कहलाता था, आर्यजातिका वाणिज्य ही इसका प्रधान कारण था। मिस[1] म्यानिङ्गने कहा है कि "भारतवर्षकी अनेक वस्तुएँ देशान्तरमें देखनेसे तथा सस्कृत ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, प्राचीन आर्यजाति वाणिज्यपरायण जाति थी।" मि०[2] एलफिन्ष्टोनने कहा है कि "मनुजीके समयमें भी आर्यगण समुद्रपथसे वाणिज्य करते थे, क्योंकि उनके ग्रन्थ पढ़नेसे ऐसा ही निश्चय होता है।" मैक्स[3] डङ्कार साहवने कहा है कि "खृष्ट जन्मसे दश शताब्दि पहले

१. Ancient and Mediaeval India.
२. History of Innia.
३. History of Antiquity.

फिनिशियन् जातिके साथ आर्यजातिका हस्तिदन्त, चन्दन-काष्ठ, स्वर्ण, रौप्य, मणि और मयूर आदिका वाणिज्य चलता था।" यह एक प्रसिद्ध बात है कि, ग्रीकजातिने भारतवासियोंसे ही चीनीका व्यवहार पहले सीखा है। अंग्रेजी सुगर शब्द संस्कृत 'शर्करा' से ही बना हुआ है। पश्चात् अरब, पारस्य और यूरोपके अनेक देशोंमें इसका प्रचार हुआ है। मि०[1] मण्डारने कहा है कि "सेलूसिडिके राज्यकालमें भी सिरियाके साथ आर्यजातिका वाणिज्य चलता था। भारतवर्षके लौह, अलंकार और बहुमूल्य वस्त्र जहाजोंके द्वारा यहाँसे ब्याबिलोन और टायर देशमें जाया करते थे।" मिश्र देशके साथ वाणिज्य सम्बन्धके विषयमें तो पहिले ही कहा गया है। रेशम, प्रवाल, मुक्ता, हीरा आदिका व्यापार सदा ही मिश्र और तदन्तर्गत अलक्जेण्ड्रियासे था। हस्तिदन्त और नीलका वाणिज्य ग्रीसके साथ प्राचीन आर्यजातिका था। "रोमके साथ भारतवासियोंका नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्य और मसालोंका व्यापार था", ऐसा प्रो० हीरेन साहबने कहा है। प्राचीन रोम देशकी स्त्रियाँ भारतीय रेशम और सुगन्ध द्रव्यको इतना पसन्द करती थीं कि, सोनेके दामसे उसे खरीदती थीं। प्लैनी साहबने दुःख प्रकाश किया है कि, इस प्रकारसे रोमके सकल प्रान्तोंसे भारतवर्षमें प्रतिवर्ष ४० लाख रुपया चला जाता था।

इस प्रकार वाणिज्यके विषयमें पाश्चात्य पण्डितोंके प्रमाणोंके अतिरिक्त हिन्दूशास्त्रीय प्राचीन और आधुनिक ग्रन्थोंमें भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। ऋग्वेदके चतुर्थ मण्डलमें इस प्रकार आर्यवणिक् गणकी समुद्रयात्राके विषयमें जो वर्णन है; सो पहिले ही कहा गया है। याज्ञवल्क्य संहितामें एक स्थानपर लिखा है :—

ये समुद्रगा वृद्ध्या धनं गृहीत्वा अधिकलाभार्थं प्राणधनविनाशशंकास्थानं समुद्रं गच्छन्ति ते विंशं शतकं मासि मासि दद्युः।

---

१. Treasury of History.

इसमें अधिक लाभकेलिये रुपया लेकर आर्य वणिकगण समुद्रयात्रा करते थे, ऐसी सूचनाकी गयी है। वृहत् सहितामें लिखा है :—

स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवाणिङ्नाविकान् स्पृशत्यनयः।
ऐन्द्राग्रेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात्॥
अथवा समुद्रतीरे कुशलागतरत्नपीतसम्बन्धे।
धननिचुललीनजलचरसितखग - शवलीकृतोपान्ते॥

इसमें पहले श्लोकमें स्वाति नक्षत्रके साथ वृष्टिका सम्बन्ध बताकर समुद्र यात्रा करनेवाले आर्यवणिक्जनोंको सावधान किया गया है और दूसरे श्लोकमें समुद्रतीरपर जहाँ कि, धनरत्नसे भरे हुए जलयानके समूह विदेशसे वाणिज्य करते हुए आते हैं, वहाँ स्नान करनेका माहात्म्य लिखा गया है। वायुपुराण, मार्कण्डेयपुराण और भागवतपुराणमें आर्य-वणिक्गणके जलपथसे वाणिज्य करनेके विषयमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। वाराहपुराणमें गोकर्ण नामक एक वणिक्के विषयमें लिखा है कि, उससे वाणिज्य करनेकेलिये समुद्रमें जाकर आँधोके द्वारा बड़ा ही कष्ट पाया था और वह डूबता हुआ बच गया था। उसी पुराणमें और एक स्थान पर लिखा है।

पुनस्तत्रैव गमने वणिग्भावे मतिर्गता।
समुद्रयाने रत्नानि महास्थौल्यानि साधुभिः॥
रत्नपरीक्षकैः सार्द्धमानयिष्ये बहूनि च।
एवं निश्चित्य मनसा महासार्थपुरःसरः॥
समुद्रयायिभिर्लोकैः संविदं सूच्य निर्गतः॥
शुकेन सह संप्राप्तो महान्तं लवणार्णवम्।
पोतारूढास्ततः सर्वे पोतवाहैरुपोषिताः॥

इन श्लोकोंमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि, भारतीय वणिक् लोग प्राचीन कालमें मुक्ता आदि रत्नोंके प्राप्त करनेकेलिये रत्नपरीक्षक

लोगोंके साथ समुद्रयानमें दूर दूर जाते थे। केवल जलपथमें ही नहीं अधिकन्तु स्थलपथमें भी प्राचीन आर्यजतिने समस्त पृथिवीके साथ वाणिज्य सम्वन्ध स्थापन किया था। चीन, तुर्किस्तान, पारस्यदेश, वैविलोन, मिश्र, ग्रीस, रोम आदि देशोंके साथ आर्यजातिके स्थल-वाणिज्यका भी सम्वन्ध था। प्रो० हीरेंनने कहा है कि "पश्चिम एशिया-के पामीरियान लोगोंके साथ हिन्दुओंका स्थलपथमें वाणिज्य था। इस पामारके पथसे हिन्दुगण रोममें यातायात करते थे। वहाँसे सीरियाके वन्दरमें होकर अनेक पश्चिमी देशोंके मार्ग वने हुए थे।" स्थलपथसे वाणिज्यका दूसरा भी एक मार्ग वना हुआ था, यथा:—हिमालयको पारकर अकस्स, वहाँसे कस्पियन सागर और वहाँसे क्रमशः यूरोपके वाजारोंमें। इस प्रकार कई मार्गोंसे हिन्दुजातिका स्थलपथसे वाणिज्य चलता था। वही प्राचीन कालमें आर्यजातिके समस्त पथिवीपर आधि-पत्यविस्तार तथा वाणिज्य-विस्तारका इतिवृत्त है।



प्राचीन शिल्पोन्नति।

(६)

वुद्धि-विकाशका प्रथम लक्षण शिल्पनिपुणता है। जव वुद्धि सूक्ष्मता-को धारण करती जाती है, तव यद्यपि वह पूर्ण सूक्ष्मताको धारण करके आध्यात्मिक जगत्में पहुंच जाती है, तथापि प्रथम अवस्थामें वह स्थूल जगत्में हो विचरण करती हुई नाना स्थूलजगत् सम्वन्धीय सुचारु विचित्रताको प्रकाशित करने लगती है। यही वहिर्जगत् संबंधीय विचित्रता शिल्पनैपुण्य है। प्राचीन भारतमें इस विद्याकी पूर्णोन्नति हुई थी। आर्यगणका चतुर्थ उपवेद स्थापत्यवेद ही इसका साक्षी है। यदिच आजकलकी तरह कपड़े वुननेकी कल, मैदा पीसनेकी

कल, सिलाई करनेकी कल, सूत कातनेकी कल आदि कलें प्राचीन कालमें नहीं थीं, तथापि प्राचीन भारतमें देशोन्नति और धर्मोन्नतिकारिणी शिल्पविद्या और विज्ञान विद्यामें कितनी उन्नति हुई थी, इसकी धारणा भी आजकलके लोग नहीं कर सकते। आर्यशिल्पकी उन्नतिके चमत्कारोंका वेदमें भी वर्णन किया हुआ है। सहस्रद्वार और सहस्र स्तम्भयुक्त अट्टालिका, लोहनिर्मित नगर और प्रस्तरनिर्मित पुरीका वर्णन ऋग्वेदमें किया गया है। यह भारतवर्षकी अपूर्व शिल्पनिपुणताका ही कारण है कि, पूर्व कालमें भारत ऐश्वर्यके लोभसे लुब्ध होकर विदेशीय नरपति साईरस, डेरायस, सेमीरामिस और अलेकजण्डर आदि वीरगण तथा मध्य कालमें चगेजखाँ महमूद गजनवी, तैमूरलङ्ग और पिछले दिनों यूरोपके स्पेनीज, पर्त्तुगीज, फ्रेंच, अंग्रेज आदि जातिगण भारतकी इस पवित्र भूमिमें आये थे। यह भारतवर्षकी शिल्पनिपुणताका ही कारण है कि, प्रथम मुसलमान राजाओंने भारतपर अधिकार जमाया था और अब अंग्रेज जातिने भारतपर अधिकार-विस्तार किया है। यद्यपि अब उस शिल्पनिपुणताका यहाँ नाममात्र भी नहीं रहा, तथापि यह कहना ही पड़ेगा कि, उसके कारण ही इन विदेशीय लोगोंकी दृष्टि भारतपर पड़ी थी। आज दिन भी प्राचीन इतिहाससमूह, भारत वर्षके प्राचीन मन्दिर आदिके ध्वंसावशेष और पुराणोंकी अद्भुत गाथायें इस शिल्पनिपुणताका प्रमाण भली भाँति दे रही हैं ! मय-दानव-निर्मित युधिष्ठिरकी राजसभाका वर्णन महाभारतमें पढ़कर किसके चित्तमें लोभ और दर्शनकौतूहल न होगा ? राजसूय यज्ञके समय मयदानवने जो सभागृह बनाया था, उसकी तुलना संसारमें नहीं हो सकती। उस सभामें उन्होंने एक अनुपम सरोवर निर्माण किया था। उसमें मणिमय मृणाल और वैदूर्यमयपत्रयुक्त शतदलकमल और काञ्चनमय कुमुदकदम्ब सुशोभित थे, अनेक चित्रविचित्र विहङ्गम केलि करते थे। प्रफुल्ल पङ्कज और सुवर्णनिर्मित मत्स्य कूर्मादिकी विचित्रता और चतुर्दिशाओंमें चित्रस्फटिकसोपानयुक्त उस निर्मल सरोवरके चित्रको वास्तविक सरोवर समझकर अनेक राज-

पुरुष मुग्ध और भ्रान्त होकर उसमें गिर पड़े थे। इस प्रकारका शिल्प-वैचित्र्य समस्त पृथिवीमें दुर्लभ है।

आजकल रेलगाड़ीको देख सब लोग आश्चर्य करते हैं; परन्तु भारत-वर्षके प्राचीनविमान, अस्त्र-शस्त्र और नाना यान आदिके वर्णनका पाठ करनेसे यह स्वतः ही सिद्ध हो जायगा कि, यद्यपि यूरोपने शिल्प विद्यामें बहुत ही उन्नति की है, तथापि उसकी बुद्धिमें अभीतक यह बात नहीं आती कि, किस प्रकारसे प्राचीन आर्योंने उन पदार्थोंकी सृष्टि की थी और किस प्रकारसे भारतने शिल्प विद्यामें इतनी उन्नति कर डाली थी। थोड़े ही दिन पहिले अधःपतित भारतकी जो शिल्प विद्या थी, दीन हीन भारतवसी भी जो काश्मीरी शाल, ढाकाके वस्त्र काशी अदि स्थानोंके पट्टवस्त्र और नाना सुवर्ण, रौप्य, रत्न आदिसे जड़ित आभूषण आदि बनाया करते थे, उसकी समानता अभी तक शिल्पनिपुण यूरोपसे नहीं की गयी है। वस्त्रशिल्पके विषयमें प्रसिद्ध है कि, किसी समय एक शिल्पीने अम्बारीके सहित हाथीकी भी ढाक देनेवाले मलमलके थानको एक बाँसकी नलीमें बन्द करके अकबरको नजर किया था। ढाकेमें दश १० गज लम्बा और एक हाथ चौड़ा मलमलका थान जो खास तौर पर बनता था, ८ तोला वजनका होता था और अँगूठेके छेदसे आर पार हो जाता था। डाकाके रेसिडेन्टने एक बार लिखा था कि, २५० मील लम्बा सूत केवल आधसेर रूईमें तैयार किया गया था और सुनार गाँवमें १७५ हाथ लम्बे सूतका वजन एक रत्ती पाया गया था।

मिस मैनिङ्गने कहा है कि "प्राचीन आर्य्यजातिकी शिल्पकला ऐसी अपूर्व थी कि, यूरोपके दर्शक लोगोंको उनकी प्रशंसा करनेकेलिये योग्य शब्द ही नहीं मिलते थे। वे लोग उनकी सुन्दरता और कारी-गरीको देखकर विस्मयसमुद्रमें एकदम डूब जाते थे।" प्राचीन ग्रीक और मिश्र देशकी शिल्पकलाकेसाथ तुलना करके प्रोफेसर हीरेन साहेबने कहा है कि "मूर्तियोंका निर्माण और बाहरकी सजावटमें आर्यशिल्प

ग्रीस और मिश्रदेशके शिल्पसे बहुत उन्नत था।" कर्नल टाड साहबने कहा है कि, "भारतीय प्राचीन स्तम्भ और मूर्तियों आदिके देखनेसे मालूम होता है कि, मानो कलासुन्दरीने अपनी समस्त सुषमाको प्राण खोलकर भारतवर्षमें प्रकट कर दिया है। यहांपर सभी शिल्पकौशल पूर्णताके पदपर प्रतिष्ठित हो गया है।" बैरन डालवर्ग साहबने 'Geographical Ephemerides.' द्वारकापुरीकी शिल्पकलाको देखकर उसे "चमत्कारपुरी" कह दिया था और कहा था कि, "प्राचीन आर्य्यजातिने यहां पर शिल्पविद्याको पृथिवीभरकी अन्य सब जातियोंकी अपेक्षा पूर्णतापर पहुँचाया है।" इलोरा आदि स्थानोंके गुफामन्दिर, श्रीजगन्नाथ आदि देवताओंके देवालय, चित्तौर आदिके दुर्ग, कटकआदि प्राचीन स्थानोंके नदीबन्ध, आगरेका ताजमहलआदि प्राचीन स्थानोंके देखनेसे प्राचीन भारतकी शिल्प-उन्नतिका दृढ़ प्रमाण मिल सकता है। इलोराके गुफामन्दिरको देखकर तो पश्चिमी लोग स्तब्ध हो गये हैं। उनकी बुद्धिमें ही यह बात नहीं आती कि, पहाड़ खोदकर इतनी मूर्तियां और इसप्रकारके मकानात कैसे बन सकते हैं? प्रोफेसर हीरेनने इसके विषयमें कहा है कि, "इलोराके गुफाद्वारमें प्रवेश करते समय हृद्‌कम्प होता है कि, ऐसे हल्के स्तम्भोंके ऊपर इतना विशाल छत्र कैसे रक्खा गया है और दोनोंके वजन और शक्तिके अनुपातका हिसाब किस तरहसे किया गया है।" इसको सोचकर प्राचीन आर्यशिल्पकी अपूर्वताके विषयमें अनुमान होता है। पहाड़के गात्रपर खोदा हुआ इसप्रकारका शिल्पकलायुक्त सुन्दर मन्दिर पृथिवीमें और कहीं भी नहीं है। प्राचीन आर्यजातिकी शिल्पविद्याका यह अद्वितीय प्रमाण है। इसीप्रकार पूनाकेपास कारोलिका गिरिगुफा, सालसती गुफा, अजन्ता गिरिगुफ़ा आदि सभी प्राचीन आर्यशिल्पकी पराकाष्ठाके परिचायक हैं। उदयगिरि और खण्डगिरिमें जो शिलामन्दिर प्रतिष्ठित हैं, भुवनेश्वरमें जो अपूर्व मन्दिर विराजमान है, इनकी तुलना संसारमें कम ही मिलती है। फर्गुसनसाहबने History of Indian and

Eastern Architecture. में कहा है कि "डाट बनानेका कौशल प्राचीन आर्य्यजाति ही जानती थी और यह कौशल भारतवर्षसे ही अन्यदेशोंमें प्रचारित हुआ है।" अध्यापक बेवरसाहबने Indian Literature. में कहा है कि "पश्चिमी देशोंमें धर्मालयोंका शिखर भारतवर्षके बौद्धमन्दिरोंके शिखरोंके अनुकरणपर निर्माण किया गया है।" हन्टरसाहबने कहा है कि "वर्तमान समयमें अङ्गरेज शिल्पीगण जो कुछ शिल्पनैपुण्यका परिचय दे रहे हैं, इनमेंसे अधिकांश शिल्प आर्यशिल्पके अनुकरणपर ही बना हुआ है।" किसी-किसीका यह कहना है कि, सारासेन जातिनेही प्रथम डाट निर्माणका आविष्कार किया था। परन्तु कर्नल टाड साहबने स्वप्रणीत 'राजस्थान' नामक ग्रन्थमें प्रतिपादन किया है कि, सारासेन जातिने प्राचीन आर्य्यजातिसे ही उसप्रकारके डाट बनानेकी पद्धति सीखी थी। इसप्रकारसे अनुसन्धानद्वारा सिद्ध होता है कि, प्राचीन आर्य्यजातिने स्थापत्य विद्या तथा शिल्प कलाकी विशेष उन्नति की थी, जिसका प्रसार आज भी सर्वत्र देखनेमें आ रहा है।

— :o: —

चिकित्सा-विज्ञानकी उन्नति ॥

(७)

मानवहितकारी चिकित्साविज्ञानमें भी भारतवर्षही आदि गुरु है। आजकलके पश्चिमी पण्डितोंने यही सिद्ध किया है कि, पश्चिमी चिकित्सा-विद्या उन्होंने रोमके पण्डितोंसे प्राप्त की थी और रोम अधिवासियोंने वह विद्या ग्रीससे पायी थी। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि, ग्रीस अधिवासियोंने इस विद्यामें उन्नतिलाभ केवल तीन सहस्र वर्षके अन्तर्गत ही किया। परन्तु जब देखते हैं कि, अपने आचार्य्योंका तिरोभावकाल प्रायः पाँच सहस्र वर्षोंके लगभग समझा जा सकता है; और जब यह भी

ग्रीस इतिहासमें देखते हैं कि, ग्रोस राज्यकी प्रथम उन्नत अवस्थामें वहाँसे बहुत राजपुरुष भारतवर्षमें आये थे और यहाँसे नाना विद्यायें भो सीख गये थे, जब अपनी चिकित्सा विद्याकी प्रशंसा उनकी पुस्तकोंमें पायी जाती है, तव इन लक्षणोंसे मानना ही पड़ेगा कि, अपनो चिकित्सा-विद्या ग्रोसकी चिकित्साविद्यासे पूर्व्वहो प्रकट हुई थो। तव यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि, जिनको यूरोपीय चिकित्सक अपना गुरु बताते हैं, भारतवर्ष उनका भी गुरु है। अध्यापक विलसन ने Wilson's works vol III. p. 269. में कहा है कि—"प्राचीन हिन्दुजा त ने रोगनिदान, साधारण चिकित्सा तथा शस्त्र चिकित्सामें बहुत ही उन्नति की थो। उनका निदानशास्त्र बहुत ही पूर्ण शास्त्र है।" विलियम हन्टर साहबने Imperial Indian Gazetteer. में कहा है कि "चिकित्सा शास्त्रके सकल विभागकी औषधियाँ प्राचीन हिन्दुओंको ज्ञात थीं। शरीरके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा नाड़ी, पेशी, स्नायु आदिका उनको उत्तम ज्ञान था। इनके निदानशास्त्रमें धातु, उद्भिज्ज तथा जोव जगत्से अनेक औषधिसंग्रहका विवरण पाया जाता है, जिससे पश्चिमी चिकित्सा शास्त्रवेत्ताओंने भी बहुत कुछ शिक्षा पायी है।" अध्यापक बेवर साहबने Indian Literature. में कहा है कि "वैदिक युगमें पशु चिकित्साका विशेष ज्ञान हिन्दुओंको था, क्योंकि उसके प्रत्येक अङ्गका पृथक्-पृथक् नाम उनके चिकित्साशास्त्रोंमें मिलता है।" विलियम हन्टर, मिस मैनिङ्ग आदि सभीने भारतीय चिकित्सा-प्रणालीसे प्रभावित होकर कहा है कि, प्राचीन आर्यजातिसे ही चिकित्सा-शास्त्र पूर्वकालमें मुसलमानोंने सीखा था। यह विद्या भारतसे हो अरबदेशमें गयो थी और बगदादआदि देशोंमें आकर ग्रोस देशके लोगोंने अरबवासी मुसलमानोंसे आर्यजातिकी इस चिकित्सा विद्याको सीखा था। मद्रासके गवर्नर लार्ड एम्थिल साहबने १९०५ सालके फरवरी महीनेके लेक्चरमें यही बात कही थी कि "भारतसे ही चिकित्साविद्या अरबमें और अरबसे यूरोपमें गयी थी। इतना तक कि चेचक रोगके दूर करनेकेलिये तथा

प्लेगविष नाशकेलिये जो टीकाआदि दिया जाता है, उसकी भी शिक्षा आर्यजातिसे ही यूरोपके लोगोंने प्राप्त की है।"

चिकित्सा विद्यामें जो-जो विषय रहनेसे उसकी पूर्ण उन्नति समझी जा सकती है, वे सभी हिन्दु-आयुर्वेदमें थे। शस्त्रविद्या, रसायनविद्या, धातुप्रयोगविद्या और काष्ठादिभेषजप्रयोगविद्या सभी आयुर्वेदमें पायी जाती है। दूसरीओर जल चिकित्सा (Hydropathy) शस्त्रचिकित्सा; अर्कचिकित्साआदि सभी बातें इस सिद्धान्तमें मिलती हैं। यहाँ तक कि, डा० हेनिमनद्वारा आविष्कृत होमियोपैथिक चिकित्साका जो 'विषस्य विषमौषधम्' नामक मौलिक सिद्धान्त है, वह भी आयुर्वेदमें पाया जाता है। आयुर्वेद आठ तन्त्रोंमें विभक्त है; यथाः—शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगद, रसायन और वाजीकरण। इन आठ प्रकारके चिकित्सातन्त्रोंमें शरीरविज्ञान, देहविज्ञान, शस्त्रविज्ञान, धात्रीविज्ञान, चिकित्साविज्ञान, भेषजविज्ञान और रोगनिदान, सभी विषय वर्णित किये गये हैं। केवल मनुष्यकी चिकित्सा ही नहीं पशु आदिकी चिकित्साप्रणाली भी आयुर्वेदमें वर्णित है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके अनुशीलन करनेसे सर्वव्याधिविनाशनोपाय निर्द्धारित हो सकता है। कक्षीवानकी कन्या घोषा कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो गयी थी। अश्विनीकुमारोंने उसको रोगमुक्त किया, तब उसका विवाह हुआ था। कण्वऋषि अन्धे हो गये थे, निषधपुत्र बधिर हो गये थे, वध्रिमतीके पति नपुंसक हो गये थे, परन्तु प्राचीन आर्य-जातिके आयुर्वेदशास्त्रकी ही महिमा है, जिससे ऐसे-ऐसे कठिन रोग भी आराम हो जाया करते थे। आर्यचिकित्साविद्यामें विशेषता यह है कि, उसने स्वतन्त्र रूपसे काष्ठादिक और धातुज औषधियोंकी उन्नति की है। कोई आचार्य केवल काष्ठादि औषधियोंकी ही व्यवस्था कर गये हैं और कोई केवल धातुज औषधियोंको ही प्रसिद्ध कर गये हैं। आयुर्वेदोक्त चिकित्साशास्त्र कितनी उन्नतिपर पहुँचा था, सो इसके नाड़ीज्ञानशास्त्रके

पाठ करनेसे ज्ञात हो सकता है, जिसकी सहायतासे नाड़ीपरीक्षाद्वारा सकलप्रकारके रोगोंका भली भाँति निदान हो सकता है और जिसमें विलक्षणता यह है कि, एकमात्र नाड़ीज्ञानसे ही तीन मास, छःमास अथवा उससे अधिक काल पूर्वमें भी भविष्यत् रोगका ज्ञान हो सकता है। यह नाड़ीज्ञानशास्त्र इतना गम्भीर और सूक्ष्म है कि, आजतक पश्चिमी विद्वान् उसको समझ नहीं सके हैं। इसके सिवाय शस्त्रचिकित्सामें भी प्राचीन आर्योंने बहुत उन्नति की थी। डाक्टर रेली साहबने बड़ी प्रशंसाके साथ मुक्तकण्ठ होकर कहा है :—"प्राचीन भारतवासियोंके ग्रन्थ देखनेसे प्रकट होता है कि, वे शस्त्रचिकित्सामें विशेष निपुण थे। प्रायः १२७ प्रकारके शस्त्रोंका वे शरीरपर प्रयोग किया करते थे और शस्त्रव्यवहारके साथ नानाप्रकारकी औषधियोंका भी प्रयोग किया करते थे।" वेबर साहबने Indian Literature. में कहा है कि "शस्त्रचिकित्सामें (Surgery) प्राचीन आर्यगण पूर्णता प्राप्त कर चुके थे और इस विद्यामें पश्चिमी लोग अभी उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। जैसा कि विकृत कान या नाकको सुधारकर नया बना देनेकी चिकित्सा पश्चिमी चिकित्सकोंने प्राचीन हिन्दुओंसे ही प्राप्त की हैं।" डाक्टर हन्टर साहबने भी ऐसी ही आर्य-शस्त्रचिकित्साकी बड़ी प्रशंसा की है। मिस् म्यानिङ्गने कहा है कि, "प्राचीन हिन्दुओंके शस्त्रचिकित्सायन्त्र ऐसे उत्तम और सूक्ष्म हुआ करते थे कि, उनसे केशतक सीधे लम्बे फाड़े जा सकते थे।" इस प्रकारसे पश्चिमी विद्वान् तथा एतद्देशीय सभी पुरुषोंने प्राचीन आर्यजातिके चिकित्साशास्त्रकी महिमा प्रकट की है।

पृथिवीके अन्य देशोंमें जितनेप्रकारकी चिकित्साविद्या आजतक प्रचलित हुई है, उनकेसाथ आयुर्वेदकथित चिकित्सा विद्याकी विभिन्नता कई बातोंमें हैं। वे भिन्नतायें ऐसी हैं, कि उन वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका कुछ भी भाव अन्य देशोंके चिकित्सक वैज्ञानिक आजतक समझ नहीं सके हैं। सांख्यदर्शनके सिद्धान्तोंको मूलमें रखकर आयुर्वेदके आचार्योंने यह सिद्ध

किया है कि, जैसे त्रिगुणमयी प्रकृतिके सत्त्वरजतमरूपी तीनों गुण जब समान रहते हैं, वही साम्यावस्था प्रकृति कहलाती है, साम्यावस्था प्रकृति मुक्तिका कारण है और वेही तीनों गुण जब छुटाई बड़ाईको प्राप्त होते हैं, उसको वैषम्यावस्था कहते हैं, जो वन्धनका कारण है। ठीक उसी सिद्धान्तके अनुयायी आयुर्वेदाचार्योंकी यह सम्मति है कि, वे ही तीन गुण आयुर्वेदके वात, पित्त और कफ हैं। इनकी विषमतासे सब प्रकारके रोग होते हैं और मृत्यु इसका अन्तिम फल है और इन तीनोंकी समतासे शरीर नीरोग होता है और शरीर ही केवल नहीं मन और बुद्धि दोनों पूर्णताको प्राप्त होकर मनुष्यको मुक्तितक प्रदान कर सकते हैं। फलतः आयुर्वेदशास्त्रका जो वात पित्त कफजनक त्रिदोष विज्ञान है, वह असाधारण दार्शनिक रहस्योंसे पूर्ण है, जिसका रहस्य अभी अन्यदेशवासियोंको विदित नहीं हुआ है।

—:०:—

आर्य-वीरता और युद्धविद्या

(८)

स्वाधीन जाति ही वीरताका आदर करती है और देशके कल्याण-केलिये जीवन उत्सर्ग करनेमें परम गौरव समझती है; परन्तु प्राचीन आर्यजातिमें यह पूर्णताका ही लक्षण है कि, उसकी वीरताके साथ अपूर्वता और धर्मभाव भरा हुआ था। प्राचीन आर्य-जाति आधुनिक पाश्चात्य जातिकीतरह मदोन्मत्त होकर और धर्मको तिलाञ्जलि देकर युद्ध नहीं करती थी; किन्तु धर्मकी विजय और अधर्म्मकी पराजय करना प्राकृतिक नियम और भगवदाज्ञा है, इसलिये उसीमें निमित्त मात्र बनकर सहायता करनेकेलिये युद्ध करती थी। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य दुर्योधनके अन्नसे प्रतिपालित हुए थे, इसलिये उनका उनके पक्षमें होकर युद्ध करना धर्मानुकूल था; परन्तु

दुर्योधनके अधार्मिक होनेकेकारण उनका नाश भी धर्मानुकूल था। इसलिये भीष्म पितामह और आचार्य द्रोणने पाण्डवोंके विरुद्ध लड़ाई करनेपर भी उनको अपनी मृत्यु कैसे हो सकती है, सो बताकर धर्मकी विजय कराया था। दुर्योधन पाण्डवोंका परम शत्रु था, तथापि जिस समय युद्धमें विजयी होनेकेलिये क्या युक्ति है, इसके जाननेकेलिये दुर्योधन युधिष्ठिरके पास आये, तो युधिष्ठिरने अपने ही नाशका उपाय दुर्योधनको अकपट चित्तसे बता दिया था। 'अश्वत्थामा मर गये हैं' इसी एक मिथ्या वाक्यके कहनेसे द्रोणाचार्यकी मृत्यु होगी, इसलिये जब युधिष्ठिरको मिथ्या कहनेका परामर्श दिया गया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि—"इन्द्रप्रस्थका राज्य तो सामान्य है, यदि स्वर्गका राज्य और ब्रह्मलोक भी मिल जाय तथापि युधिष्ठिर मिथ्या कभी नहीं कहेगा।" ऐसे अनेक आदर्श मिलते हैं, जिनसे प्राचीन आर्यगणमें धर्मानुकूल वीरताका लक्षण प्रमाणित होता है। आर्यजातिमें स्थूल सम्पत्तिको लेकर संग्रामका कारण उपस्थित होनेपर भी चित्तकी उदारता नष्ट नहीं होती थी। धार्मिक पाण्डवोंपर दुष्ट कौरवोंने ससारभरमें ऐसा कोई अत्याचार और नृशसता नहीं है, जिसका प्रयोग नहीं किया था; परन्तु ज्येष्ठ, आत्मीय सदा ही पूज्य हैं, इसलिये प्रतिदिन युद्धके अन्तमें पाण्डव जन्मान्ध धृतराष्ट्रको प्रणाम करनेको जाया करते थे और दुर्योधनकी स्त्रियाँ जिस-समय तीर्थयात्रामें विपद्ग्रस्ता हो गयी थीं, उससमय समस्त पाण्डवोंने मिलकर उनकी रक्षा की थी। निरस्त्र शत्रुपर प्रहार करना और निर्बल शत्रुपर अत्याचार करना और अन्याय्य रीतियोंसे युद्ध करना आर्यजाति स्वप्नमें भी नहीं जानती थी। एवं जहाँपर आर्यजातिमें इस उदाहरण और महत्त्वके विरुद्ध कोई भी कार्य हुआ है, तो उसकी बड़ी भारी निन्दा की गयी है। प्रसंगोपात्त आर्य्यजातिके शस्त्रप्रयोगका एक उदाहरण प्रस्तुत करना उचित है :—अर्जुनने खाण्डव दहन करते समय मय नामक दानवराजका प्राण बचाया था। उससमय कृतज्ञताका परिचय देनेकेलिये

दानवराज मयने अर्जुनसे कहा कि, मेरे पास जो अलौकिक दानवास्त्र हैं, मैं आपको अपने प्राण बचानेके बदलेमें देकर कृतकृत्य होना चाहता हूँ। पश्चात् अर्जुनद्वारा उक्त दानवास्त्रोंका फल पूछनेपर मय दानवने उत्तर दिया कि, ये अस्त्र ऐसे अलौकिक हैं कि, इनकेद्वारा आकाशमें उड़कर वा अदृश्य होकर शत्रुका नाश किया जा सकता है, जलमें डूबकर अदृश्य होकर शत्रुओंका क्षय हो सकता है, शत्रुके सम्मुख न जाकर अतिदूरसे शत्रुका नाश हो सकता है इत्यादि। इन लक्षणोंको सुनकर अर्जुनने अस्त्रोंकी प्रशंसा की; परन्तु यह कहा कि हम आर्य्य हैं, ये सब अनार्य-सेवित अस्त्र हमारे काम नहीं आ सकते, इसकारण हम इनके लेनेके अनिच्छुक हैं इत्यादि। इस उदाहरणसे स्पष्ट हो प्रमाणित होगा कि, आर्य्यगण किसी प्रकारके धर्मलक्ष्ययुक्त युद्धके पक्षपाती थे और अद्भुत और अलौकिक शक्तिविशिष्ट होनेपर भी दानव-सेवित अस्त्रोंके प्रयोग करनेमें भी अधर्म्म समझते थे। आर्यगणका जो युद्ध कौशल था, उसमें छलका सम्बन्ध नहीं था और वीरताके विरुद्ध युद्धको वे पापजनक समझते थे। शत्रुको सामने रखकर, उसको सचेत करके उसकेसाथ युद्ध करना आर्य-युद्धनीतिका मूलमन्त्र था। छिपकर शत्रुको मारना, आकाशमें, जलमें, अथवा स्थलमें स्वयम् अदृश्य रहकर शत्रुका संहार करना, भागते हुए पीठ दिखानेवाले शत्रुको मारना, रात्रिमें युद्ध करना, सोते हुए शत्रु-पर अस्त्रप्रयोग करना, ये सब बातें आर्यगणकी युद्धविद्यामें पापजनक समझी जाती थीं। दानवगण ऐसी युद्धविद्याको अपने काममें लाते थे, किन्तु आर्यगण ऐसा करनेपर अति निन्दयीय समझे जाते थे। आजकल युद्धविद्यामें और आजकलके युद्धकेअस्त्रशस्त्रोंमें अनेक अद्भुत अलौकिकता रहनेपर भी यही बातें अधिक पायी जाती हैं। आर्यगण इन बातोंको आर्ययुद्धनीतिके अतिविरुद्ध समझते थे, इसीकारण ऐसे अस्त्रशस्त्रोंकी उन्नति नहीं की थी।

आर्य्योंके दिव्यास्त्र कैसे थे, उसका कुछ कुछ वर्णन पुराणोंमें

मिलता है। मन्त्र विनियोगके भेदसे ब्राह्मणोंके कामकेलिये और क्षत्रियोंके कामकेलिये वे विभिन्न रूपसे काममें आते थे। मन्त्रकी सहायतासे क्षत्रियोंके विभिन्न अस्त्र अलौकिक शक्तियुक्त हो जाते थे। ब्राह्मणगण उन्हीं मन्त्रोंकेद्वारा साधनशैली और विनियोगके भेदसे अन्तर्राज्यकी सहायतासे स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, पीड़ा और ग्रहदोषआदिसे रक्षण इत्यादि अलौकिक कार्य्य किया करते थे। रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थोंमें वर्णित क्षत्रियोंके दिव्यास्त्रोंकी अलौकिक शक्तिका वर्णन कविकल्पना नहीं हैं। उनकी वर्णनशैलीके मूलमें अलौकिक सत्य निहित है। जो लोग दैवजगत्पर विश्वास नहीं करते हैं, वे चाहे कैसा ही कहें परन्तु दैव जगत्के माननेवाले व्यक्ति दिव्यास्त्रोंके अस्तित्वपर अविश्वास कर ही नहीं सकते। यद्यपि उन मन्त्रयुक्त अस्त्रोंको साधन-प्रणाली इस समय प्रायः लुप्त हो गयी है, तथापि अभीतक दिव्यास्त्रके पद्धति-ग्रन्थ भारतवर्षमें कहीं कहीं मिलते हैं। आर्य-जातिके युद्धमें वीरताकी पराकाष्ठा थी, आर्य-जाति केवल क्षुद्र ऐहलौकिक स्वार्थकेलिये नहीं लड़ती थी, किन्तु धर्म-युद्धमें आत्मबलिदान करके उत्तरायण गतिके-द्वारा अनन्त दिव्यसुख लाभ करनेकेलिये लड़ाई करती थी। मनु संहितामें कहा है:—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाऽभिमुखो हतः॥

परिव्राजक योगी और सम्मुख रणमें जीवनोत्सर्ग करनेवाले वीर पुरुष दोनों ही उत्तरायण गतिको प्राप्त करते हैं। गीतामें कहा है:—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

लड़ाईमें मर जानेपर स्वर्गलाभ होगा और जीत होनेपर स्वराज्य मिलेगा। इसप्रकारके शास्त्रोक्त उपदेशकेअनुसार आर्य-जाति वीरताके साथ देश और धर्मकेलिये लड़ती थी, आर्यों और उनकी सहधर्मिणियोंका

परलोकपर पूर्ण विश्वास था, वे जानते थे कि, सम्मुख मृत्यु और सह-मरणके बाद दोनों ही अक्षय स्वर्गलाभ और आनन्दोपभोग कर सकेंगे। इसलिये आर्य वीरोंको मरनेमें डर नहीं था, वे खटियापर सोकर मरना निन्दनीय समझते थे और युद्धमें मरना ही परम पवित्र और आर्यजनोचित समझते थे और उनकी स्त्रियाँ भी उनकेसाथ सहमृता होती थीं। स्वदेशहितैषिताका भाव उनके रोम-रोममें भरा हुआ था। स्वदेश और स्वधर्म सेवाको भगवत्-पूजा समझकर निष्काम कर्मयोगकेद्वारा वे आत्माकी उन्नतिकी साधना करते थे और तभी प्राचीन कालमें भारतकी वह शोभनीय गौरव गरिमा दिग्दिगन्तमें परिव्याप्त थी। केवल प्राचीन आर्यजातिमें ही नहीं, उसकी उस गौरवरविकी प्रज्वलित रश्मिने अतीतकी अमानिशाको भेद करके वर्तमान आर्यजीवनको भी उज्ज्वल किया। अभी थोड़े ही दिन हुए मेवाड़के पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप प्रमुख राजपूत वीरगण तथा राठौर दुर्गादास और मेवाड़के पृथ्वीराज आदि वीरोंने भारतमाताकी मुखच्छविको अपनी प्रतिभा और वीरतासे जिसप्रकार उज्ज्वल किया है, पृथ्वीभरके इतिहासमें भी ऐसा दृष्टान्त विरल है। यही प्राचीन आर्य्यजातिमें धर्ममूलक वीरताका दृष्टान्त है, जिसका विशेष वर्णन राजस्थानआदि ग्रन्थोंमें मिलता है।

केवल वीरता ही नहीं अधिकन्तु युद्ध विद्याकी पूर्णोन्नति प्राचीन आर्यजातिमें हुई थी। मुसलमान आक्रमणसे पूर्ववर्त्ती समर विद्याको देखकर कोई-कोई भावुक ऐसा कहने लगते हैं कि, समरविद्यामें भारतवर्षने वैसी उन्नति नहीं की थी, जैसी आजकल यूरोप कर रहा है; उनका यह विचार भी भ्रमपूर्ण ही है। जब देखते हैं कि, आर्यजातिके चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और स्थापत्यवेदमेंसे एक उपवेद धनुर्वेद युद्ध विद्याका ही प्रकाशक है, जब देखते हैं कि, प्राचीन आर्यजातिके युद्धशस्त्र तथा अस्त्र चलानेकी रीति कैसी अद्भुत थी, जिसका विदेशीयगणकेलिये समझना भी आज कठिन हो रहा है, तब कैसे

कहेंगे कि, उनकी समरविद्या वर्तमान यूरोपीय समर विद्यासे न्यून थी। यह तो ऐतिहासिक प्रमाण ही है कि, जब ग्रीसके अधिवासी तथा मुसलमान सम्राट् भारतमें आक्रमण करनेको आये थे, तो वे भारतकी पैदल, अश्वारोही, रथी और हस्त्यारोही सेनाको देखकर मोहित हुआ करते थे। पृथ्वीविजयी महावीर अलेक्जंडर पृथ्वीकी किसी जातिसे नहीं डरा किन्तु केवल वह प्रथम तो राजा पुरुकी वीरतासे अति मोहित हुआ और पुनः मगध सम्राट्के सेना बलको सुनकर ही अपने देश लौट गया। प्राचीन आर्यजातिकी अद्भुत अस्त्रविद्या, वीरत्व और व्यूहरचनाआदि युद्ध कौशल कितनी उन्नतिको प्राप्त थे, इसका प्रमाण संस्कृतके प्राचीन इतिहासके पाठ करनेसे भली भाँति अनुभव हो सकता है। प्राचीन धनुर्वेदमें जिसप्रकार अद्भुत अस्त्रशस्त्रके वर्णन देखनेमें आते हैं, उनका प्रयोग करना तो दूरकी बात है, उनके रहस्योंको समझना और उनपर विश्वास करना भी आजकल कठिन हो गया है। नागपाश, शक्तिशेल, सम्मोहन, अग्निवाण, वारुणास्त्र आदिमें वैद्युतिक शक्ति तथा दैवीशक्तिका सञ्चार करके उनकेद्वारा मूर्च्छाआदि किसप्रकार उत्पन्न किया करते थे, सो आर्यजाति आजकल भूल गयी है और पाश्चात्य जातियोंने भी आजतक उनका रहस्यभेदन नहीं कर पाया है। विलसन् साहबने कहा है कि, "वाणनिक्षेप विद्यामें प्राचीन आर्यजाति अद्वितीय थी।" एकदम कई वाण निक्षेप करना, निक्षिप्त बाणको लौटा लाना, बाणकी कईप्रकारकी वैद्युतिक शक्तिकेद्वारा शत्रुको कभी मूर्छित, कभी मुग्ध, कभी दग्धआदि कर देना, यह सब प्राचीन आर्यजातिमें युद्ध-विद्याकी पूर्णताका लक्षण था। द्रौपदीके स्वयम्वरमें अर्जुनकी वाणविद्या, कुरुक्षेत्रके युद्धमें भीष्म, द्रोण और कर्णकी अद्भुत अस्त्रचालन विद्या, राम रावणके युद्धमें राम रावण और मेघनादकी विचित्र रहस्यमय शक्तिशेल, सम्मोहन, वारुणास्त्र, पाशुपतास्त्र, गारुड़ास्त्र नागपाशास्त्रआदि अस्त्रविद्यायें संसारमें

अतुलनीय और आधुनिक जगत्में स्वप्नस्मृतिवत् हो रही हैं। परन्तु प्राचीन आर्यजातिमें यही विद्यायें पराकाष्ठातक पहुँच गयी थीं। तलवारके चलानेमें आर्यजाति जिसप्रकार निपुण थी, वैसी कोई भी जाति संसारमें निपुण नहीं थी। प्रसिद्ध टेसिया साहबने भारतवर्षीय तलवारको समस्त संसारके शस्त्रोंसे अच्छा कहा है। मुसलमान लोग राजपूत वीरोंकी तलवारसे इतना डरते थे कि, उनके ग्रन्थोंके पत्र पत्रमें इसका इतिहास मिलता है। हण्टर साहबने कहा है:—"सैन्यचालन, सैन्यसन्निवेश, सैन्योंका विविध व्यूहोंके रूपसे युद्ध क्षेत्रमें संरक्षण, व्यूहरचनाआदि युद्ध विद्याका वर्णन महाभारतमें अनेक स्थानोंमें पाया जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि, प्राचीन आर्य्यजातिमें इस विद्याकी कोई भी कमी नहीं थी।" उनके सैन्यसन्निवेशकी प्रक्रिया उरस, कक्षा, पक्ष, प्रतिग्रह, कोटी, मध्य, पृष्ठआदि रूपसे विभक्त थी। उनकी व्यूहरचनामें जो अद्भुत कौशल था, सो आजकलके क्या पाश्चात्य क्या एतद्देशीय कोई भी नहीं जानते हैं। कुछ व्यूहोंके नाम उनके आक्रमणके अनुसार हुआ करते थे। यथा मध्यभेदी, अन्तर्भेदी इत्यादि। कोई-कोई व्यूह वस्तुसादृश्यकेअनुसार हुआ करते थे। यथाः—मकरव्यूह, श्येनव्यूह' शकटव्यूह, अर्द्धचन्द्र, सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, दण्ड, मण्डल, असंहत इत्यादि। कुरुक्षेत्रके युद्धका महाभारतमें वर्णन है कि, युधिष्ठिर अर्जुनको (मेसिडोनियनव्यूहकी तरह) सूचीमुख व्यूहनिर्माण करनेको कह रहे हैं और अर्जुन वज्रव्यूह रचना ठीक होगी—ऐसी प्रार्थना कर रहे हैं और इसीकारण अपनी रक्षाकेलिये दुर्योधन अभेद्यव्यूहकी आज्ञा कर रहे हैं। इन वर्णनोंसे ज्ञात होता है कि, प्राचीन कालमें आर्यजातिने युद्ध विद्यामें पूर्ण उन्नति प्राप्त की थी। किसी किसी अर्वाचीन पुरुषका यह सन्देह है कि, जब आर्यजाति बन्दूक और तोपका व्यवहार नहीं जानती थी, तो उनमें युद्धविद्याकी उन्नति कैसे हो सकती है? परन्तु आर्यजातिके प्राचीन इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे उनका यह सन्देह

मिथ्या प्रमाणित हो जायगा। जब प्राचीन भारतके अनन्त अस्त्र शस्त्रोंमें नालास्त्र और शतघ्नी आदिका वर्णन देखते हैं और बड़े बड़े युद्धोंमें उन सब अस्त्रोंका प्रयोग भी देखते हैं, तो प्राचीन आर्यजातिकी युद्ध-विद्याके विषयमें इसप्रकारका सन्देह करना सर्वथा निर्मूल है। आर्य-जातिके प्राचीन ग्रन्थोंके देखनेसे प्रमाणित होता है कि, वे तोपको शतघ्नी बन्दूकको नालास्त्र, बारूदको उर्व्वघ्नी और गोलाको गुड़क कहा करते थे। बारूदके उर्व्व नामक ऋषिद्वारा आविष्कृत होनेसे उसका नाम उर्व्वघ्नी था। यद्यपि इन शब्दोंका व्यवहार अन्यप्रकारके अर्थोंमें भी पाया जाता है, तथापि अनेक स्थानोंमें इन चारोंका व्यवहार तोप, बन्दूक, गोला और बारूदकेलिये ही हुआ है। इसप्रकारके युद्ध यन्त्र आर्यजातिके युद्धमें व्यवहृत होते थे, इसमें सन्देह नहीं। आर्यधर्म्ममें बाधा न हो, आर्यशस्त्र अनार्यशस्त्र न बन जायँ और धर्म युद्धका ढंग बदलकर वह अधर्मयुद्ध न बन जाय, केवल इसी लक्ष्यसे ऐसे यन्त्रोंकी विशेष उन्नतिकी ओर आर्य्यजातिने विशेष लक्ष्य नहीं डाला था, ऐसा विज्ञजनोंका सिद्धान्त है।

उर्व्वघ्नीं प्रोथितां कृत्वा शतघ्नीं गुडकैर्युताम्।

बारूद और गोलेसे भरकर युद्धमें तोप चलायी गयी। इन सब प्रमाणोंसे प्राचीन कालमें बन्दूक, तोपआदि अस्त्र व्यवहृत होते थे, यह सिद्ध होता है। यह बात यथार्थ है कि, मुसलमानोंके आक्रमणसे पूर्व्ववर्ती आर्य्यगण इस प्राचीन युद्धविद्याको प्रायः भूल गये थे, क्योंकि यह तो सर्ववादिसम्मत है कि, महाभारतके महायुद्ध और बौद्धगणके महाविप्लवद्वारा भारत श्मशानप्राय हो गया था और ऐसे महायुद्ध तथा महाविप्लवके अन्तमें जातीय अवनति कैसी होती है, उसका प्रमाण आज कलका यूरोप भली भाँति दे रहा है। इसीकारण परवर्ती मनुष्य-सब क्रियासिद्ध विद्याओंको भूल गये थे; तथापि इधरके इतिहासपर विचार करनेसे भी पता लगता है कि, आर्योंमेंसे यह विद्या सम्पूर्णतया

नष्ट नहीं हो गयी थी। सम्राट् पृथ्वोराजके समयमें तोपोंका व्यवहार था, इसका प्रमाण उनके जीवनचरित्रके इतिहासमें पाया जाता है, यथाः—

जंबूर तोप छूटहि झनंकि।
दशकोश जाय गोला भनंकि॥

जम्बूर और तोप झंझनाती हुई छूटी और उनका गोला शब्द करता हुआ दस कोसतक पहुँचा। प्रसिद्ध गङ्गाकी नहर खोदते समय सर आर्थर कट्लि साहबने उत्तर पश्चिम प्रदेशमें पृथ्वीमध्यस्थित एक वृहत् नगरका ध्वंसावशेष पाया था और उसमें कई एक तोपें भी मिली थीं, जिससे उक्त साहबने यह सिद्धान्त निश्चय किया कि, प्राचीन भारत-वासिगण तोपका व्यवहार जानते थे। प्रोफेसर विल्सन साहबने कहा है कि "हिन्दुओंके चिकित्साशास्त्रके पढ़नेसे पता लगता है कि, वे बारूद प्रस्तुत करना जानते थे और उनके ग्रन्थोंमें भी इसके प्रयोगका वृत्तान्त बहुधा मिलता है।" मैफी साहबने Hist Indica. में कहा है कि "भारतवासिगण पुर्तगीज् लोगोंकी अपेक्षा तोपआदि आग्नेय अस्त्रोंका प्रयोग विशेष जानते थे।" ग्रीस देशके थेमिसटियसने तथा महावीर अलेक्जण्डरने एरिस्टाटिल्को पत्र लिखते समय लिखा है कि, उनकी सेनाओंके ऊपर हिन्दुओंने भीषण तोपोंके गोलोंका वर्षण किया था। शास्त्रोंमें शतघ्नीका ऐसा वर्णन मिलता है कि, यह आग्नेयास्त्र लोहेसे बनता है, उसका आकार बड़े वृक्षके स्कन्धकी तरह होता है। यह दुर्गके ऊपर चढ़ाया जाता है और युद्धक्षेत्रमें भी लाया जाता है। इसका शब्द वज्रकी तरह होता है। इन सब वर्णनोंसे प्राचीन कालमें तोपका व्यवहार होना प्रमाणित होता है। इण्डियन् गवर्नमेण्टके फारेन् सेक्रेटरी ईलियट साहबने भारतीय आग्ने-यास्त्रोंके विषयमें चर्चा करते समय कहा है कि "साल्टपिटर जो बारूदका एक प्रधान मसाला है और गन्धक जो उसके साथ मिलाया जाता है, दोनों ही भारतवर्षमें बहुत मिलते हैं और मेरा यह सिद्धान्त है कि, प्राचीनकालमें भारतवासिगण इसप्रकार बारूद और तोपका

व्यवहार जानते थे। उनके मकान और फाटकके सामने ऐसी चीजें रक्खी जाती थीं और उनमें दूरसे आग लगायी जाती थी। इसके सिवाय आग लगनेपर फट जाने वाले भी अनेक अस्त्रोंका हिन्दुलोग प्रयोग करते थे।" इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे प्राचीन कालमें तोपोंका व्यवहार और मुसलमान राज्यके समय भी कहीं तोपोंका व्यवहार सिद्ध होता है। अस्त्र युद्धके सिवाय जल-युद्ध और आकाश युद्धमें भी प्राचीन आर्य्यगण विशेष निपुण थे, इसका प्रमाण शास्त्रोंसे मिलता है। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ११६ सूक्तमें वर्णन है कि, राजर्षि तुग्रने अपने पुत्र भुज्युको ससैन्य समुद्रपथमें दिग्विजय करनेके लिये भेज दिया था। इससे प्राचीन कालमें जलयुद्धका भी निश्चय हुआ। कर्नेल टाड़ और स्ट्रावो साहबने कई स्थानोंमें कहा है कि, प्राचीन कालमें आर्य्यगण जलयुद्धमें विशेष निपुण थे क्योंकि समस्त संसारव्यापी वाणिज्यश्रीकी रक्षाकेलिये उनको सदा ही जल सैन्य, अर्णवपोत आदि रखने पड़ते थे, फरिया साउजाने Asia Portuguesa and Ibid में कहा है कि "ख्रिष्टीय १५०० शताब्दोमें एक गुजराती जहाजने पुर्तगीजोंके प्रति अनेक तोपें चलायीं थीं। १५०२ में हिन्दुओंने कालिकटके युद्धमें जहाजसे काम लिया और दूसरे वर्ष जामोरिन जहाजके द्वारा ३८० तोपें लायीं गयीं थीं।" आकाशयुद्धके विषयमें प्राचीन इतिहासमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। रावणका पुष्पक विमानपर चढ़कर दिग्विजय करना, इन्द्रजित्का आकाश मार्गसे रामचन्द्रकी सेनापर निरन्तर बाणवर्षण करना इत्यादि इत्यादि अनेक प्रमाणोंकेद्वारा विमानविद्यामें प्राचीन आर्य्य जाति-की पारदर्शिता सिद्ध होती है। कुछ दिन पहले जब वेलुन और एरोप्लेन आदि खेचरयन्त्रोंका आविष्कार नहीं हुआ था, तब लोग हिन्दुओंके पुराणादि ग्रन्थोंमें आकाशयानोंका वर्णन देखकर हंसा करते थे; परन्तु भगवान्की कृपासे आज नवीन जेपलिन और एरोप्लेन आदिके आविष्कार-द्वारा अर्वाचीन लोगोंका वह भ्रम दूर हो गया है और प्राचीन आर्य्यजाति किसप्रकार सूक्ष्म युद्धविद्यामें निपुण थी, इसको सोचकर वे चकित हो

रहे हैं। येही वर्णन प्राचीन आर्य्य जातिमें युद्ध-विद्याकी पूर्णताके परिचायक हैं।

— :ॐ: —

संगीत विद्याकी पूर्णता

(९)

सबप्रकारके जीवोंमेंसे केवल मनुष्यमें ही आनन्दमय कोषका पूर्ण विकाश है। हँसनेकी शक्ति उसका प्रत्यक्ष लक्षण है। सङ्गीतका उच्छ्वास उसकी अभिव्यक्ति है। इसीकारण मनुष्य चाहे सभ्यजातिका हो, चाहे असभ्य जातिका हो, सङ्गीतकी प्रवृत्ति सबमें थोड़ी बहुत पायी जाती है; परन्तु केवल प्राचीन आर्यजातिमें ही सङ्गीत विद्याकी चरम उन्नति हुई थी। आर्यजातिके वेदादि शास्त्रोंमेंसे तीसरा उपवेद गंधर्व-वेद सङ्गीतशास्त्र है। आधुनिक यूरोपवासियोंने इस शास्त्रको केवल शिल्प माना हैं और इसकेद्वारा वे केवल वैषयिक आनन्द भोग किया करते हैं; परन्तु प्राचीन भारतवासियोंकी यह विद्या वैसी नहीं थी; इसकी उस कालमें इतनी उन्नति हुई थी कि, सङ्गीतशास्त्र एक प्रधान विज्ञानशास्त्र समझा जाता था और इसका विशेष सम्बन्ध आध्यात्मिक जगत्से रक्खा गया था। जहाँ कुछ क्रिया हैं, वहाँ कम्पन होगा और जहाँ कम्पन है, वहाँ अवश्य शब्द होगा। यद्यपि क्रियाकी शक्तिके न्यून होनेसे उसका शब्द अपने कर्णगोचर न होता हो क्योंकि सूक्ष्मतर विषयोंको अपनी इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं करतीं; परन्तु जहाँ क्रिया है, जहाँ कम्पन है, वहाँ किसी न किसीप्रकारका शब्द अवश्य होगा। इस ब्रह्माण्डकी सृष्टिक्रिया भी एक प्रकारका कार्य है और समष्टि रूपसे उस क्रियाकी ध्वनिका नाम प्रणव अर्थात् ओंकार है; शास्त्रमें ओंकारके लक्षण लिखे हैं, यथाः—"तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्" और यह

ध्वनि योगियोंको भली भाँति स्वतः ही सुनायी देती है। जैसे समष्टिरूप प्रकृतिकी ध्वनि ओंकार है, वैसे ही व्यष्टिरूप नाना प्रकृतिके नाना स्वर हैं और नाना स्वररूपी नाना प्रकृतिके आविर्भाव करनेकेलिये ही संगीत शास्त्र है। "वेदानां सामवेदोऽस्मि" ऐसे वाक्यद्वारा जो सामवेदकी महिमा शास्त्रोंने गायी है, सो संगीत शास्त्रकी सहायतासे ही पढ़ा जाता है।

यह संगीतकी माधुरीका ही प्रभाव है कि, सामवेद और वेदोंकी अपेक्षा मनुष्योंके हृदयको शीघ्र आकृष्ट करता है। यूरोपीय संगीत विद्याके पक्षपाती होनेपर भी जब प्रोफेसर वेबर आदि पश्चिमी संगीत आचार्योंको भारतवर्षीय राग रागिनियोंके कौशलकी प्रशंसा करते देखते हैं, तब यह कहना ही पड़ेगा कि, यूरोपके विद्वान् अपनी सङ्गीत विद्याकी उन्नतिको देखकर मोहित हो रहे हैं। कोलमैन साहबने Hindu Mythology. में कहा है कि "सर जोन्स साहबकी यह सम्मति है कि, हिन्दु सङ्गीत शास्त्र पश्चिम देशके सङ्गीत शास्त्रसे सर्वथा उत्तम है" ए. सी. विलसन साहबने Hindu System of Music. में कहा कि "आर्य-जातिकेलिये यह एक गौरव तथा अभिमानका विषय है कि, उनका सङ्गीतशास्त्र पृथिवीमें सबसे प्राचीन है। उनके वेदमें इसका तत्त्ववर्णन है और मुसलमान जातिने आर्यजातिसे ही सङ्गीतविद्या प्राप्त की है" सर हण्टर साहबने Imperial Gazetteer. में कहा है, "साधारण राग तथा स्वरोंसे तृप्त न होकर आर्यजातिने ऐसे-ऐसे सूक्ष्म रागोंका आविष्कार किया है कि, जिनके सुनने तथा समझनेकेलिये पश्चिमदेशीयजनोंके पास न कान हैं और न बुद्धि है। यूरोपके लोग जो हिन्दु सङ्गीत विद्याकी निन्दा करते हैं, इससे उनकी इस विद्याके विषयमें मूर्खता ही प्रकट होती है।" प्रोफेसर वेबर साहबने Indian Literature. में कहा कि "रागविद्या हिन्दुओंसे ही पारस्य देशवालोंको प्राप्त हुई थी, वहाँसे अरब देशमें सङ्गीत विद्या गयी थी और अरबदेशसे ही इस विद्याका कुछ-कुछ अंश यूरोपमें गया है।" इसप्रकार पश्चिम देशीय विद्वानोंने मुक्तकण्ठ होकर आर्यसंगीतशास्त्रकी प्रशंसा की है।

आर्य्य ऋषिकालमें इस संगीत शास्त्रद्वारा षोडश सहस्र राग रागिनियाँ गायी जाती थीं और उनके साथ तीनसौ छत्तीस ताल बजते थे; इसके देखनेसे ही बुद्धिमान् जान सकते हैं कि, प्राचीन भारतवर्षकी सङ्गीत विद्याने जितनी उन्नति की थी, यूरोपवासी अभीतक उसको समझ भी नहीं सकते। सङ्गीतके शास्त्रीय ग्रन्थोंमें अनेक प्रमाण हैं कि, विशेष-विशेष राग रागिनियोंके गानेसे विशेष-विशेष रोग दूर हो जाते हैं। केवल व्याधि ही नहीं, आधिव्याधियां दोनों ही दूर हो जाती हैं। श्रोताओं-को हँसना, रुलाना, श्रोताके शोक मोहादिको दूर करना, इसप्रकारके अनेक कार्य विशेष-विशेष राग रागिनियोंके गानेसे किये जा सकते हैं। ये सब बातें केवल कपोलकल्पित नहीं किन्तु विज्ञान तथा प्रमाण-सिद्ध हैं। इसके प्रमाणमें आजकलकी पदार्थ विद्या अर्थात् सायन्सकी भी मदद ली जा सकती है।

अपने यहाँके सिद्धान्तानुसार सङ्गीतशास्त्रके मुख्य सात स्वर रखे गये हैं। इसका कारण यह है कि, वहिःप्रकृति प्रायः सप्तधा होती है और इसीकारण हमारे शास्त्रमें अनेक पदार्थोंके सात ही विभाग देखनेमें आते हैं, यथाः—सप्तरत्न, सप्तधातु, सप्तरङ्ग, सप्तदिन, सप्तभूमिका एवं ब्रह्मविद्या प्रकाशक सप्तदर्शन आदि। पुनः इन्हीं सात स्वरोंके तार-तम्यसे नानाप्रकारकी राग रागिनियोंकी सृष्टि हुई, जो नानाप्रकारकी प्रकृतियोंके रूप हैं। मनुष्यके हृदयमें जिसप्रकारकी प्रकृतिके आविर्भाव करनेकी आवश्यकता होती है, उस प्रकृतिके राग वा रागिनियोंकेद्वारा कोई मन्त्रविशेष वा कविता विशेषका गान करनेसे अवश्य ही उसके हृदयमें वैसी ही प्रकृतिकी स्फूर्ति होने लगती है। जब जड़ वाद्ययन्त्रमें ही ऐसा देखते हैं कि, एक ही सुरमें बाँधकर सितार वीणा या और कोई यन्त्र एक घरमें पाँच सात रख दिये जायँ और पश्चात् एकको बजाया जाय तो अन्य पाँच सात यन्त्र स्वयं ही एकके आघातके प्रतिघातको पाकर जीवितके समान बजने लगते हैं, तो किसी रागका गान करनेपर जिस प्रकृतिका वह राग है, चेतन मानव हृदयमें प्रति-

घातकेद्वारा उस प्रकृतिको क्यों नहीं उत्पन्न करेगा? भैरव रागका रूप वैराग्ययुक्त है और उसके रूपको भी वृषभवाहन भस्म-भूषित और जटा कौपीनधारी आदि स्वरूपसे वर्णन किया है, इस कारण यदि कोई मन्त्र अथवा पद उस रागमें ठीक रीतिपर गान किया जायगा तो अवश्य ही श्रोताओंमें वैराग्य प्रकृतिका आविर्भाव शीघ्र ही होगा। इन तत्त्वोंके विचार करनेसे ही भली भाँति प्रतीत हो सकता है कि, पूज्यपाद त्रिकालदर्शी ऋषियोंने जितने शास्त्र प्रकाशित किये हैं, उनकी कैसी गम्भीरता है और वे कैसी वैज्ञानिक मूलभित्तिपर स्थित हैं।

जिसप्रकार पदार्थ दृश्य और अदृश्य भेदसे दो प्रकारके हुआ करते हैं, उसीप्रकार जीवकी इन्द्रिय–शक्ति जिन स्वरोंको ग्रहण कर सकती है, वह श्रुत और जिनको नहीं ग्रहण कर सकती वे ही अश्रुत स्वर कहलाते हैं। इसके उदाहरणमें समझ सकते हैं कि, नाना पक्षी और कीट-पतङ्ग आदि नाना भूतोंकी स्थूल ध्वनि तो श्रुत स्वर है और वृक्ष, लता आदिके अभ्यन्तरमें रससञ्चार क्रियाका शब्द, मनुष्योंमें शोणितसञ्चार-क्रियाका शब्द और आकाशमें नाना ग्रह उपग्रहोंकी भ्रमणक्रियाका शब्द आदिको अश्रुत स्वर समझना उचित है। जैसे सूक्ष्म विचार दृष्टिसे ओंकारको अश्रुतशब्दका आधार कह सकते हैं, वैसे ही सप्त ग्रामको श्रुत शब्दोंका आधार करके मान सकते हैं।

शब्द-उत्पत्तिका विस्तारित कारण अन्वेषण करनेपर यही कहना पड़ेगा कि, कोई एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थद्वारा आहत अथवा चालित होनेपर उसके परमाणुसमष्टिमें जो एक प्रकारका कम्पन उत्पन्न होता है, उस कम्पनकी शक्तिकेअनुसार उस पदार्थ विशेषसे स्वरविशेषकी उत्पत्ति हुआ करती है। तत्पश्चात् वह पदार्थपरमाणु-कम्पन जब अपने निकटवर्ती वायुका चालित करता है, तब वह कम्पन वायु अथवा और किसी परिचालकद्वारा श्रवणइन्द्रियमें पहुँचकर स्वरकी अनुभूति कराता है। इसके उदाहरणमें समझ सकते हैं कि, जब हम किसी काँचके पात्रको

किसी यष्टिद्वारा आघात करेंगे तभी उसमेंसे शब्दकी उत्पत्ति होगी, किन्तु वह शब्द तभीतक रहेगा, जबतक उस पात्रमें कम्पन रहेगा, क्योंकि शब्द होते ही यदि हम पात्रको अपने हस्तद्वारा धारण करके उसके कम्पनको निरोध कर देते हैं तो देखते हैं कि, तत्काल ही उसका शब्द अपने नियमित समयके पूर्वही बन्द हो जाता है। वंशी आदिमें भी वंशीस्थित वायुकम्पनद्वारा शब्द उत्पन्न होता है और उसीप्रकार कण्ठद्वारा भी कण्ठस्थित वायु कम्पनसे गायकगण नाना स्वरोंकी उत्पत्ति कर सकते हैं। यह पूर्व ही कह चुके हैं कि, पाञ्चभौतिक इस संसारकी प्राकृतिक अवस्था सप्तधा विभक्त है, इस कारण श्रुतस्वर भी सात ही प्रकारके होते हैं और येही सात स्वर सप्त ग्राम कहाते हैं। इन ग्रामोंके नाम षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद हैं। जिस प्रकार अश्रुत स्वरके मूलरूप "ओंकार" की सहायतासे नाना मन्त्रद्वारा अदृश्य प्रकृति चालित की जाती है, उसीप्रकार श्रुत स्वरके मूलरूप सप्तग्रामकी सहायतासे नाना राग रागिणियोंकी उत्पत्तिके-द्वारा नाना दृश्यप्रकृतिका आविर्भाव किया जा सकता है; अर्थात् ओंकार मूलक नाना मन्त्रोंद्वारा जैसे आध्यात्मिक जगत्‌में शक्ति विस्तार किया जा सकता है, वैसे ही सप्त ग्राममूलक नाना राग रागिणियोंकी सहायतासे स्थूल तथा मानसिक जगत्‌में अपनी शक्तिद्वारा गायक नाना प्रकृतियोंका आविर्भाव कर सकता है। इसप्रकार अद्भुत शक्तिशालिनी वैज्ञानिक भित्तिपर स्थित होकर पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने त्रितापतप्त जीवोंके हितार्थ मधुर सङ्गीत विज्ञानकी सृष्टि की थी।

आर्यसंगीतविद्या त्रयीविद्या कहलाती है, क्योंकि वह तीन भागोंमें विभक्त है, यथा-गान, वाद्य और नृत्य। नृत्य विद्याके दो भेद पूर्वाचार्योंने किये हैं। उनमेंसे एकको ताण्डव और दूसरेको लास्य कहते हैं। पुरुषके नृत्यकी शैलीको ताण्डव और स्त्रीके नृत्यकी शैलीको लास्य कहा गया है। ये दोनों शैलियाँ अब प्रायः लुप्त होने लगी हैं। प्राचीन कालमें जो गानकी शैली प्रचलित थी, उसके भी तीन भेद थे, यथा-पहला सामगान,

जो शुद्ध वैदिक था, दूसरा मार्गीविद्या और तीसरा देशीविद्या। जिस भाँति आज यूरोपने और-और नाना विद्याओंमें उन्नति की है, उसी भाँति संगीत विद्यामें भी उन्होंने बहुत ही उन्नति की है, फिर भी यूरोपकी नवीन संगीत विद्या और भारतकी प्राचीन संगीतविद्यामें आकाशपातालसा अन्तर है।

यूरोपकी संगीतविद्याका बहिर्लक्ष्य है, परन्तु भारतके संगीतका अन्तर्लक्ष्य था। यूरोपकी सङ्गीतविद्याकी भित्ति शिल्पनैपुण्य हैं, परन्तु प्राचीन आर्योंकी संगीतविद्याकी भित्ति गम्भीर विज्ञान थी। नवीन यूरोपने वैषयिक आनन्दकेलिये ही संगीतकी उन्नति की है, परन्तु प्राचीन भारतने इस माधुरी विद्याको आत्मोन्नतिका पथरूप करके माना था। मनुष्यद्वारा सप्तग्राम जितना गाया जा सकता है, उतने ही ग्रामोंमें प्राचीन आर्यगण संगीतको गाया करते थे; अर्थात् तीनों ग्रामोंके अतिरिक्त प्राचीन आर्य्यगण कुछ व्यवहार नहीं किया करते थे, परन्तु आजकल यूरोपमें नाना वाद्योंद्वारा आठ दश अथवा ततोधिक सप्तक व्यवहारमें आते हैं, यह अस्वाभाविक है। यह पूर्व ही सिद्ध हो चुका है कि, पूज्यपाद महर्षिगण मनुष्योंके चित्तमें नाना समय नाना प्रकृतियोंके आविर्भाव करनेकेलिये ही अनन्त रागरागिणियोंका अनन्तविज्ञानकौशल प्रकट कर गये हैं; परन्तु यूरोपके संगीतमें वैसी कोई भी शैली दीख नहीं पड़ती, वे केवल प्रत्येक गीतक्रम अर्थात् गतोंका स्वतन्त्र रूपसे काल्पनिक नाम रख दिया करते हैं।

मानवीय प्राकृतिक शक्तिकी उन्नतिद्वारा कण्ठस्वर-साधनसे गान करनेकी अलौकिक रीति जैसे प्राचीन आर्योंने आविष्कार की थी, वैसी रीति यूरोपवासी जानते ही नहीं, यूरोपमें जो कुछ उन्नति हुई है, वह अस्वाभाविक यन्त्र द्वारा ही हुई है। गानकी उन्नत रीति उनकी संगीत विद्यामें है ही नहीं। जिसप्रकार नाना तालोंकी विचित्र रीति और लयज्ञानका सूक्ष्म कौशल भारतीय संगीतमें है, उसप्रकार ताल और

लयकी सूक्ष्मता आजतक यूरोपवासी नहीं जानते हैं और नृत्य विद्याकी तो बात ही नहीं, क्योंकि प्राचीन नृत्य विद्याका जो कुछ वर्णन शास्त्रद्वारा देखनेमें आता है, उसका नाममात्र भी यूरोपके संगीत आचार्योंको ज्ञात नहीं है। इन सब विचारोंके उपरान्त आर्य्य संगीत शास्त्रमें जिसप्रकार षड्ऋतु विचार, दिवा रात्रि विचार, प्रहर-यामार्ध विचार, देशकाल विचार और प्रकृति और प्रवृत्ति विचारके साथ अनन्त राग रागिणियोंका विभाग किया गया है, उस विज्ञानकी सूक्ष्मता आजतक यूरोपीय आचार्य्य समझ नहीं सके हैं। इतिहासज्ञ जानते हैं कि, ग्रीकजातिद्वारा भारत-आक्रमणके अनन्तर ही भारत-वर्षकी संगीत विद्या लुप्त हो गयी, परन्तु ग्रीकोंके भारत-आगमनके पश्चात् ही ग्रीसमें संगीत आदि नाना विद्याओंको उन्नति हुई थी और तत्पश्चात् ग्रीससे रोममें और रोमसे समस्त यूरापमें संगीतविद्याका प्रचार हुआ था। इन प्रमाणोंद्वारा भारतीय संगीतशास्त्रका आदित्व प्रमाणित होता है और यह भी प्रमाणित होता है कि, यूरोपीय संगीत-आचार्य्य भारतीय संगीत-आचार्योंकी शिष्यपरम्परामें ही हैं, परन्तु भेद इतना ही है कि, भारतीय संगीतविद्या अन्तर्जगत्में भ्रमण करती हुई भगवत्पदारविन्दमें जा मिली थी; किन्तु यूरोपीय संगीतशास्त्र केवल जड़ जगत्में ही विचरण कर रहा है। कोई-कोई यूरोपीय संगीतपक्षपाती महाशय ऐसा कहते हैं कि, यन्त्रविद्यामें जैसी यूरोपीय संगीतने उन्नतिकी है, वैसी भारतवर्षने नहीं की थी। इसके उत्तरमें यदि च यह स्वीकार करने योग्य ही है कि, आज यूरोपमें अगणित संगीत यन्त्र बजाये जाते हैं, फिर भी सूक्ष्म दृष्टिसे यह मानना ही पड़ेगा कि, उन यन्त्रोंके आविष्कारमें भारतवर्ष ही आदि गुरु है। भारतवर्षका वीणायन्त्र देखनेसे कौन बुद्धिमान् उसका श्रेष्ठत्व और आदित्व स्वीकार नहीं करेगा और कौन विचारज्ञ यह नहीं परख सकेगा कि, पियानो आदि लौहतारमय यन्त्र उसीके अनुकरण और उदाहरणपर बनाये गये हैं। पुनः मृदङ्ग, रुद्रवीणा और वंशी आदि यन्त्रोंके देखनेसे उनके आदित्व और श्रेष्ठत्वमें

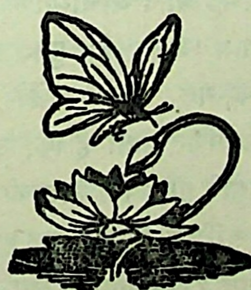
किसीको भी सन्देह नहीं होगा और सूक्ष्म विचारसे यह भी जान पड़ेगा कि, मृदङ्ग आदि यन्त्रके अनुकरण पर यूरोपके ड्रग आदि यन्त्र, सारङ्गी यन्त्रोंके अनुकरणपर वायोलिन आदि यन्त्र, शहनाईयन्त्रके अनुकरणपर क्लीरियोनेट यन्त्र, तूरी, भेरी, नरसिंहा आदि यन्त्रोंके अनुकरणपर कई एक यूरोपीय समर वाद्ययन्त्र, तुमड़ी (सँपेरे जो बजाते हैं) के अनुकरण पर बैगपाईपयन्त्र और वंशी आदि यन्त्रोंके अनुकरणपर फ्लूट आदि यन्त्र बनाये गये हैं। यन्त्रोंकी संख्या चाहे अब बहुत ही बढ़ गयी हो, परन्तु संगीत विज्ञानकी उन्नतिमें सकल प्रकारसे यूरोपको प्राचीन भारतसे ही सहायता मिली थी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। विशेषतः प्राचीन आर्योंके संगीत यन्त्रोंमें पूर्णता, श्रेष्ठता और विशेषता यह है कि, उनका प्रकाशित मृदङ्ग जिस भाँति सब स्वरोंमें बजाया जा सकता है, उस प्रकार यूरोपीय तालरक्षक यन्त्र नहीं बजाये जा सकते और जिस प्रकार कोमल, तीव्र, अतिकोमल, अतितीव्र स्वर आदि स्पष्टरूपसे वीणा आदि यन्त्रोंमें प्रकाशित किये जा सकते हैं, उसप्रकार पूर्णताके साथ पियानो अथवा हारमोनियम आदि यन्त्रोंमें कदापि प्रकाशित नहीं हो सकते। अब आज भारतवर्षके संगीतकी चाहे कैसी ही हीन दशा हो गयी हो, विचारवान् पण्डित यह मुक्तकण्ठ होकर कहेंगे कि, भारतवर्ष ही संगीत शास्त्रका आदि गुरु है, भारतवर्षीय संगीत ही किसी समय पूर्णताको प्राप्त हुआ था और भारतवर्षके आर्योंका संगीत ही जीवोंको भगवद्भजनमें पूर्ण रूपसे सहायता कर सकता है।

जबतक पूज्यपाद ऋषियोंका आविर्भाव इस संसारमें बना रहा तब-तक इस शास्त्रकी पूर्ण उन्नति बनी रही। अब पुनः उनके तिरोभावके अनन्तर जब जीवोंकी कुछ शक्ति घट गयी, तब इस विद्यामें भी न्यूनता हो गयी। ऋषिकालमें वेदपाठआदि सब आध्यात्मिक कर्म्मोंके साथ जब इस विद्याका गाढ़तर सम्बन्ध रहा, उस समय इस विद्याको मार्गीविद्या कहा करते थे; पुनः संगीत शास्त्रकी प्राचीन रीतिको मनुष्य अपनी

शक्तिहीनतासे जब भूल गये और नवीन रीति प्रचलित हुई, उस समय यह विद्या देशीविद्या कहलायी अर्थात् वैदिक प्राचीनरीतिकी मार्गी और नवीनरीतिकी देशी संज्ञा हुई। संहिताओंमें लेख है कि, मार्गीविद्या आचार्योंके तिरोभावके साथ ही पृथ्वीसे लुप्त होकर स्वर्गमें जा रहेगी और यहाँ केवल देशीविद्या प्रचलित रहेगी। अव इस भविष्यत् वाणीका ही फल है कि, मार्गीविद्याको भारतवासी भूल गये। तदनन्तर देशीविद्याकी उन्नति होती रही और सिकन्दरके भारतवर्षपर आक्रमणतक इस नवीन विद्याके आचार्यगण भारतवर्षमें वर्तमान रहे। यदि च बौद्ध विप्लवके समय भी इस विद्याकी बहुत ही हानि हो चुकी थी तथापि इस समय-तक इस विद्याके आचार्य मिलते रहे, परन्तु देशी विद्याकी पूर्णहानिका समय इसी कालको समझना उचित है। इसी समयके अनन्तर भारत-वर्षपर विदेशीय राजाओंका आक्रमण दिन पर दिन बढ़ता रहा और कुछ दिनोंमें भारतवासियोंने अपने स्वाधीनतारत्नको यवन सम्राटोंके निकट विक्रय कर दिया, इसी राज विप्लवके संग ही भारत-वर्षकी और-और बहुत-सी विद्याओंके सहित यह संगीत विद्या भी लुप्तप्राय हो गयी। प्रकृति त्रिगुणमयी है, सृष्टि सत् और असत् भावसे भरी हुई है, इस कारण गुणग्राही अच्छे मनुष्य सब सम्प्रदायोंमें ही होते हैं; भारतीय यवन सम्राटोंमें पठान वंशके कई गुणग्राही और धार्मिक भारतसम्राट् थे, उन्होंने अपने शासनकालमें इस विद्याकी पुनः उन्नति की और उसी समय बैजू बावरा, गोपाल और खुशरू आदि नायकोंका जन्म हुआ। तदनन्तर जब बुद्धिमान अकबर बादशाह भारतसिंहासनपर आरूढ़ हुए, तब उन्होंने भी अपनी गुणग्राहिता बुद्धिसे पुनः इस विद्याकी विशेष सहायता की और उसी समय भारतवर्षमें तुलसीदास, सूरदास, स्वामी हरिदास और उनके शिष्य तानसेन आदि प्रकट हुए।

यदि भारतवर्षमें इन दोनों सम्राटोंका जन्म न होता अथवा ये दो

यवन सम्राट् इस विद्याके सहायक न होते, तो रही सही यह देशी विद्या भी भारतवर्षसे लुप्त होकर मार्गी विद्याकी तरह स्वर्गवासिनी हो रहती। इस समय इस विद्याकी उन्नति तो हुई, परन्तु इस देशी विद्याने कुछ और ही नूतन रूप धारण कर लिया और इसी समयके अनन्तर संगीत विद्या अब केवल विलासिताका ही एक अंग बन गयी है। वेदमन्त्रोंको संगीत शास्त्रके अनुसार गान करनेको ही मार्गी विद्या कहते थे, वह सामगानकी परम सहायक थी। संस्कृत अथवा भाषामें भगवत् भजन अर्थात् ध्रुवपदोंको उस अनुकरणसे गानेको ही देशी विद्या कहते हैं। परन्तु अब कालप्रभावसे मार्गी विद्या तो लुप्त ही हो गयी है और देशी विद्याने भी विकृत होकर ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तिर्वट, तिल्लाना, गजल आदि नाना रूपोंको धारण कर लिया है। मार्गीविद्यामें जो बात थी, वह देशी विद्यामें न रही और पुनः प्राचीन देशी विद्यामें जो बात थी, वह बात नवीन संगीतमें नहीं रही। संगीतका औपपत्तिक अंश तो भारतवर्षसे अब जाता ही रहा है, परन्तु जो थोड़ा-सा रहा सहा क्रियासिद्ध अंश अब भी रह गया है, वह भी भारतवासियोंकी अनवधानतासे लोप होनेके योग्य हो गया है। यही आर्यसंगीतशास्त्रकी पूर्णता, अपूर्व महिमा तथा वर्त्तमान दीन दशाका दिग्दर्शन है।



अंकविद्याकी उन्नति ।

(१०)

यह तो प्राचीन इतिहासवेत्ता यूरोपाय पण्डित गण स्वीकार ही करते हैं कि, बीजगणित, दशमिक, सङ्ख्यानिर्णय, त्रिकोणमिति, ज्यामिति रेखागणित, गणित, आदि अङ्कविज्ञानके आदिकर्ता भारतवर्षके महर्षिगण ही हैं । यूरोपोय अध्यापक प्रोफेसर प्लेफेअर साहबने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि, आर्य्यजातिका त्रिकोणमिति शास्त्र बहुत ही प्राचीन है, उनके सूर्य्यसिद्धान्त ग्रंथमें जिसप्रकार त्रिकोणमितिकी क्रियायें लिखी हैं, वे ग्रीसदेशवासी अध्यापकोंकी क्रियाओंसे बहुत ही श्रेष्ठ हैं; इन साहबने और भी लिखा है कि, भारतवासियोंकी त्रिकोणमिति वैसी विद्या यूरोपके पण्डितगण षोडश शताब्दीके पहिले नहीं जानते थे । परन्तु भारतवर्षमें यह विद्या बहुत कालसे चली आ रही थी । उन्होंने और भी लिखा है कि, सूर्य्यसिद्धान्त ग्रन्थ रचित होनेसे पहिले ज्यामिति अर्थात् रेखागणित शास्त्र भारतवासिगण सम्पूर्ण जानते थे । गणित तत्त्वका पूर्ण प्रमाण ब्रह्मगुप्त आदि आचार्य्योंके ग्रन्थोंमें भली-भाँति पाया जाता है; उन प्राचीन ग्रन्थोंको देखकर यूरोपवासिगण यह एक मत होकर स्वीकार करते हैं कि, दशमिक संख्याका आविष्कार भारतसे ही हुआ है । आर्य्यभट्ट आदि आचार्य्योंके ग्रन्थोंमें बीजगणितकी उन्नतिका पूर्ण प्रमाण पाया जाता है; पुनः डीओ फेण्टस नामक ग्रीसदेशीय पण्डित, जो कि, गत २२६० वर्षोंके लगभग वर्त्तमान थे, उनके पुस्तकके देखनेसे प्रमाणित होता है कि, उन्होंने इन्हीं भारतीय आचार्य्योंके ग्रन्थोंकी सहायतासे ही अपनी विद्याकी ऐसा उन्नति की थी । इतिहासोंमें प्रमाण है कि, खालिफ़ आलमानसर हारूनअलरसीद नामक आरबीय सम्राट् जो कि गत १२०० वर्षोंके लगभग वर्त्तमान थे, उनके

समयमें मुसलमान पण्डित मुहम्मद विनमूसा आदिकेद्वारा वीजगणित आदि गणितशास्त्र अरबी भाषामें अनूदित हुए थे। पुनः और भी प्रमाण है कि, मुसलमान सम्राटोंने जब स्पेन और पुर्तगालआदि यूरोपीय देशोंमें अपना अधिकार जमाया था, उस समय उन्होंने भारतीय नाना विद्या सिखानेके अर्थ अपने राज्यमें एक बड़ो पाठशाला खोली थी। और भी इतिहासोंमें कई एक स्थानोंमें प्रमाण है कि, ग्रीस राज्यके और अरव राज्यके कई एक विद्वान्‌गण अपने-अपने समयपर अपने राजाओंकी सहायता लेकर भारत भूमिमें गणित और ज्योतिष विद्या सीखने आये थे; और पुनः सीखकर अपने-अपने देशोंमें उनका प्रचार किया था। जब ग्रीस देशका प्राचीन इतिहासग्रन्थ और अरब देशीय इतिहास-ग्रन्थ देखनेसे यही प्रमाणित होता है कि, विद्योन्नतिके समय वहाँके पण्डितोंने प्रथम भारतवर्षकी शिष्यता स्वीकार करके बीजगणित, त्रिकोणमिति, रेखागणित तथा और-और नाना प्रकारके गणितशास्त्र अध्ययनद्वारा अपने-अपने राज्योंमें उनका विस्तार किया था; पुन; जब यह भी देखते हैं कि, इन विद्याओंका विस्तार यूरोपमें उन दोनों जातियों द्वारा ही प्रथम हुआ था तो, यह मानना ही पड़ेगा कि जगत्‌में भारतवर्ष ही इन गणित विद्याओंका आदि गुरु है।

प्रोफेसर मैकडोनल साहबने (History of Sanskrit Literature.) में कहा है "अङ्कशास्त्रकेलिये भी यूरोपियन जाति आर्यजातिकी ऋणी है। क्योंकि समस्त पृथिवीमें जिन-जिन आकारोंके अङ्क लिखे जाते हैं, उनके आदि आविष्कर्ता भारतवासी ही हैं। दशमिक संख्या भी इन्हींका आविष्कार है। अष्टम तथा नवम शताब्दोमें आर्यगण अङ्कगणित तथा वीजगणित शिक्षाकेलिये अरव देशवासियोंके गुरु वने थे और इन्हींकेद्वारा यह विद्या पश्चिम देशमें फैली है।" मोनियर विलियम साहबने (Indian Wisdom.) में कहा है, "ज्यामिति और वीजगणितका आविष्कार तथा गणित ज्योतिषके साथ उसका सम्बन्ध स्थापन

हिन्दुओंकेद्वारा ही सबसे पहिले हुआ था और उन्हींसे यह विद्या पहले अरबमें और पश्चात् यूरोपमें फैली है।" प्रोफेसर बेवर तथा मिस मैनिङ्गने भी Ancient and Mediaeval India and weber's Indian Literature में यही कहा है कि, "अङ्कगणना, दशमिक आदि सभी हिन्दुओंकेद्वारा आविष्कृत होकर पहले अरब देशमें और पश्चात् यूरोपमें विस्तृत हुए थे। बीजगणित तथा अङ्कगणितमें हिन्दुओंकी अपूर्व योग्यता थीं और अरब लोगोंने इनके ही शिष्य बनकर इस विद्याको सीखा था।" Edinburgh Review and History of India. में प्रोफेसर वालेस तथा एल्फिन्स्टोनने कहा है कि, "सूर्यसिद्धान्तमें एक प्रकार त्रिकोणमितिका वर्णन है, जो प्राचीन हिन्दुओंकेद्वारा ही आविष्कृत है और जिसको अरब, ग्रीस तथा यूरोपियन जातियाँ कोई भी नहीं जानती थीं।" इन सब प्रमाणोंसे तथा पश्चिमी विद्वानोंके वचनोंद्वारा यह सिद्ध होता है कि, अङ्कविद्याके जितने प्रधान-प्रधान भेद हैं, उनके सबसे प्रथम आविष्कार करनेवाले भारतवासी ही हैं। अङ्कविद्या अन्यान्य प्रधान-प्रधान विद्याओंमें एक असाधारण विद्या है। यह विद्या आजकलकी पदार्थविद्या अर्थात् सायन्सकी उन्नतिमें बहुत ही उपकारी है। उसकी जन्मभूमि भारतवर्ष ही है और जन्मदाता प्राचीन आर्य्यगण ही हैं।



सामुद्रिक आदि गुप्तज्ञानशास्त्र ।

(११)

प्राचीनकालमें सामुद्रिक, केरल, स्वरोदय और जीवस्वर विज्ञान आदि शास्त्रोंकी उन्नति भारतमें विशेषरूपसे हुई थी। अब इतने दिनों बाद यूरोपवासी भारत के इन शास्त्रोंको देख देखकर चकित हो इनकी महिमा प्रचार कर रहे हैं। यदिच अब सामुद्रिकशास्त्रकी उन्नति कुछ-कुछ यूरोपमें देख पड़ती है तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि, जितनी उन्नति उसकी यहाँ भूतकालमें हो चुकी है, वैसी होनेमें अभी वहुत बिलम्ब है। आजकल यूरोपीय वैज्ञानिक नूतन रीतिसे मस्तिष्क परीक्षा-द्वारा अर्थात् मृतविद्वानोंके मस्तकोंको चीर-चीर कर परीक्षाद्वारा इस शास्त्रकी उन्नति कर रहे हैं; परन्तु त्रिकालदर्शी महर्षियोंने स्वतः ही रेखागणना, मुखचिह्नगणना आदि जो अति सुगम रीतियाँ सामुद्रिक शास्त्रमें निकाली थीं, वह बात अभीतक यूराप समझ नहीं सका है। केरल आदि शास्त्रोंद्वारा नानाप्रकारके प्रकृति-इङ्गित और जीवस्वर-विज्ञानकी उन्नतिका प्रमाण भली-भाँति मिलता है। यदिच प्रकृतिमें गुण-भेद होनेके कारण प्रकृति बहुत है, तथापि सर्वव्यापक चैतन्य एक होनेके कारण सब वस्तुका सम्बन्ध सब वस्तुके साथ है; जैसे निद्राके समयमें कभी-कभी मन एकाग्र होनेसे भूत, भविष्यत् आदि अद्भुत विषय स्वप्नगोचर हो जाते हैं, विना किसी कारण आप ही आप भविष्यत्की घटनाओंके वृत्तान्त निद्रा-अवस्थाकी साम्यावस्थामें दिखायी दिया करते हैं; उसी प्रकार जीवोंका मन जाग्रत अवस्थामें भी प्रकृति-इङ्गित (छींक, बाधा और शकुन आदि) द्वारा भविष्यत् घटनाओंका अनुमान कर सकता है। मन सर्वव्यापक है, इस कारण वह जब साम्यावस्थामें हो जाता है, तब वह चाहे निद्रा अवस्थामें रहे और चाहे जाग्रत् अवस्थामें

रहे, उसका सम्बन्ध दूसरे जीवसे होकर अथवा दूसरे पदार्थपर जाते ही वहीं भविष्यत् भावकी स्फूर्ति हो जाती है; उन्हीं प्रकृतिके भावोंके समझनेमें यह शास्त्र सहायता देता है। योगिराज महर्षि पतञ्जलिने अपने योगसूत्रमें सिद्ध किया है कि, शब्दसे अर्थका ज्ञान, अर्थसे भावका ज्ञान और भावसे बोध अर्थात् यथार्थ ज्ञानका उदय होता है, इस कारण वाक्यपदार्थ और वाचक शब्द इन दोनोंका ही सम्बन्ध है और शब्दसे ही शब्दोत्पत्तिकेकारण भावका पूर्णज्ञान हो जाता है। इसी वैज्ञानिक भित्तिपर महर्षियोंने जीवस्वर विज्ञान की सृष्टिकी थी, जिसकेद्वारा नाना जीवोंकी साम्यावस्थाकी बोलीद्वारा वे भविष्यत् गणना कर सकते थे। यदिच अब यूरोप सामुद्रिक और स्वरोदयशास्त्रको कुछ-कुछ समझने लगा है तथापि जीवस्वरविज्ञान अभी वह समझ नहीं सका है; किन्तु इसके निकटवर्ती "थाटरीडिंग" नामसे एक नया विज्ञान आविष्कार कर रहे हैं; जिसके देखनेसे बुद्धिमानजन समझ सकते हैं कि, इस शास्त्रकी उन्नतिकी पराकाष्ठा अपने आचार्यगणप्रणीत जीवस्वर-विज्ञान में है। मन और वायु एक ही पदार्थ है; अर्थात् वायुरूपी प्राणके जाननेसे मनका ज्ञान हो सकता है, इसी वायुज्ञानद्वारा मनके जान लेनेकी रीतिको ही स्वरोदय कहते हैं। स्वरोदयशास्त्र प्रत्यक्षफलप्रद है, इसके पाठ करनेसे ही बुद्धिमान्‌गण जान सकते हैं कि, इस विज्ञानकी कितनी उन्नति ऋषिकालमें हुई थी। अंग्रेजी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषामें स्वरोदयविज्ञानकी कई एक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके पाठ करनेसे ही अनुमान हो सकता है कि, आजदिन यूरोपवासी स्वरोदय-विज्ञानके कितने पक्षपाती हैं। आज कलके बहुतसे यूरोपीय विद्वानोंने इस शास्त्रको देखना आरम्भ कर दिया है; और इस शास्त्रकी वैज्ञानिक भित्तिको देखकर वे प्रशंसा कर रहे हैं।

यूरोपकी वर्त्तमान पामिष्ट्री (Palmistry) विद्या हमारे यहाँकी सामुद्रिक विद्यासे ही निकली है, इसका प्रमाण यूरोपीय ग्रन्थोंसे ही

मिलता है। और पशु-पक्षियोंकी भाषा अन्तःकरणके भावमूलक होती है, उनकी भाषाओंकेद्वारा उनकी मनोवृत्तिका हाल जाना जा सकता है। यह तो अब यूरोपीय विद्वान् सिद्ध करने लगे हैं। बन्दरोंकी बोली सीखनेकेलिये तो डेपुटेशन आफ्रिकामें घूमा करता है। इन सब बातोंसे यह प्रमाणित होता है कि, अनेक सूक्ष्म विज्ञान भारतवर्षमें ऐसे प्रकाशित हो चुके थे कि, जिनका पूरा पता अभी यूरोपको नहीं लगा है।

साहित्य तथा समाज।

(१२)

साहित्य तथा समाज विज्ञान और अनेक सामाजिक शास्त्रोंकी उन्नति प्राचीन भारतने जितनी की थी, वैसी उन्नति और किसी देशमें होना असम्भव ही है। भाषामें जिस-जिस प्रकारकी शक्तिके रहनेसे जातीयभावकी पूर्णता सम्पादन हो सकती है, आर्य्यजातिकी संस्कृत भाषामें वह सब पूर्णरूपसे विद्यमान है। संस्कृत भाषाकी जितनी प्रशंसा प्रोफेसर मोनियर विलियम तथा प्रोफेसर विलसन इत्यादि विद्वानोंने की है, उससे ही जाना जा सकता है कि, सच्चे पश्चिमी विद्वान् संस्कृत भाषाको किस प्रकारसे सर्वोत्तम समझते हैं। यह तो सब विदेशीय पण्डित ही एक वाक्य होकर स्वीकार करते हैं कि, संस्कृत भाषाकी नाई मधुर, उन्नत, पूर्ण, संस्कारशुद्ध और हृदयग्राही भाषा और कोई दूसरी नहीं है; पृथिवीकी और सब भाषाओंका नाम भाषा है, परन्तु इस भाषाका नाम संस्कृत है; और भाषाओंमें परिवर्त्तन होना सम्भव है, परन्तु पूर्ण संस्कार विशिष्ट संस्कृतमें कुछ अदल-बदल ही नहीं हो सकता। भाषाके शक्ति-प्रभावसे ही श्रोता और वक्ता इन

उभयके हृदयोंमें ही एक प्रकारकी शक्ति संचारित हुआ करती है। जो भाषा जितनी उन्नत होगी उस भाषामें यह शक्ति उतनी ही उन्नत होगी। संस्कृतभाषामें इस शक्तिका पूर्णविकाश हुआ है। इसमें भाषागत शक्तिके प्रभावसे शिशुप्रकृति, स्त्रीप्रकृति, पुरुषप्रकृति, राजसिकप्रकृति और सात्त्विकप्रकृति सब प्रकृतियाँ ही स्वतन्त्र और सुचारुरूपसे विकसित होती हैं।

और देशोंकी भाषाओंके माधुर्य्यका अनुभव अर्थबोध होनेपर होता है। परन्तु केवल संस्कृत भाषामें ही यह अपूर्वता देखनेमें आती है कि, समझे या न समझे श्रवणमात्रसे ही कर्ण और मन परितृप्त हो जाते हैं। अन्य देशोंकी भाषा और अक्षर कल्पनाकेद्वारा बनाये हुए हैं; परन्तु संस्कृतभाषा सृष्टिकारिणी प्रकृतिशक्तिके प्रतिस्पन्दनमें स्वभावतः विकाशको प्राप्त होती है। भाषा भावकी द्योतक है, परन्तु अन्य देशोंकी भाषाओंकी मानवप्रकृतिके सकल भावोंके विकाश करनेकी शक्ति नहीं है। केवल संस्कृत भाषा ही मानव-प्रकृतिके सकल भावोंको पूर्णरूपसे विकसित कर सकती है। संस्कृत-भाषाकाअलङ्कार और व्याकरण जगत्में अतुलनीय है। संस्कृत भाषाकी पद्यमयी कविताशक्ति, जो कभी रणरङ्गिणी श्यामाकी तरह असुरदलन करती है और कभी लवकुशके कण्ठोंसे सुधाधाराका भी वर्षण कराती है; जो कभी रामगिरिमें विरही यक्षका दौत्यकार्य करती है और कभी चक्रवाक चक्रवाकीके कण्ठसे विरह-संगीतका स्रोत बहाया करती है; जो कभी मन्दाकिनीके अमृतसलिलमें अवगाहन करके कल्पतरुकी छायामें विश्राम लाभ करती है और कभी ऋषिपत्नियोंके साथ आलवालोंमें जलसिंचन करती है; जो कभी वेदव्यासके चित्तमें जगत्कल्याणचिन्ताकी लहरें उठाती है और कभी वाल्मीकिकी वीणासे भुवनमोहन अनन्तरागप्रवाहोंको प्रवाहित करती है; यही संस्कृत भाषाकी पद्यमयी कविताशक्ति, संस्कृत भाषाकी शब्द बहुलता, संस्कृत कोशकी पूर्णता—जिसके सामने और सब भाषायें

बालकवत् प्रतीत होती हैं—प्राचीन आर्यजातिकी अपार कृपाका ही फल है; जिसकी गौरवगरिमा अभागे भारतवासियोंसे आज विस्मृतप्राय होनेपर भी गुणग्राहिणी पाश्चात्यजाति इसका अनुभव करके शतमुखसे आर्यऋषियोंकी प्रशंसा कर रही है। मैक्समूलर साहबने कहा है (१) "पृथिवीकी सब भाषाओंमें संस्कृत ही श्रेष्ठतम भाषा है।" प्रोफेसर बोप (१) साहबने कहा है—'ग्रीक तथा लाटिन भाषासे भी संस्कृत भाषा पूर्ण, प्रचुर शब्दावली युक्त, अधिक भाव प्रकाशक, सुन्दर तथा पूर्णाङ्गयुक्त है।" जर्म्मनीदेशीय श्लेजेल (२) साहबने कहा है—"पूर्ण और विशुद्ध होनेसे ही इसका नाम संस्कृत है।" प्रोफेसर टेलर (३) साहबने कहा है—"संस्कृत भाषा आर्यजातिका एक अपूर्व आविष्कार और परम सभ्यताकी परिचायिका है। इसमें ऐसे ऐसे दर्शनादि शास्त्र हैं, जिनके सामने पिथागोरस, प्लेटोआदिके ग्रंथ बहुतही साधारण प्रतीत होते हैं।" प्रोफेसर हीरेनने (४) कहा है, "संस्कृत भाषाके पढ़नेसे पता लगता है कि, ऐसी भाषा जिस देशमें बन सकती है, वहाँके लोग सभ्यताकी पराकाष्ठापर पहुँचे होंगे।"

इस भाषामें लिखनेकी प्रणाली भी ऐसी संस्कारप्राप्त और उन्नत है कि, बुद्धिमान्‌जन थोड़े ही विचारसे जान सकेंगे कि यदि पृथिवी भरमें कोई सम्पूर्ण लेखनप्रणाली है, तो वह देवनागरी लेखनप्रणाली है; और सब भाषाओंके शब्द इन अक्षरोंमें लिखे जा सकते हैं। परन्तु जगत्‌में ऐसी कोई भी भाषा नहीं है, जो संस्कृत शब्दोंको यथावत् लिख सके। संस्कृत भाषामें पूर्णताके सिवाय एक विशेषता यह है कि, यही भाषा

1. Edinburgh Review.
2. History of Literature.
3. Journal of the Royal Asiatic Society.
4. Historical Researches.

५

जगत्की और सब भाषाओंकी जननी रूप है; विशेष प्रशंसनीय विषय यह है कि, संस्कृतके आदि होनेमें किसी देशके पंडित भी सन्देह नहीं करते। पोकक साहबने (१) कहा है—"ग्रीक भाषा संस्कृत भाषासे ही निकली है।" अध्यापक हिरेनने (२) कहा है—"प्राचीन जेन्द भाषा संस्कृत भाषासे ही निकली है।" मि० डुवो साहबने (३) कहा है—"वर्त्तमान यूरोपकी सभी भाषाओंकी जननी संस्कृत भाषा है।" अध्यापक वोप साहबने (४) कहा है "किसी समय संस्कृत भाषा ही पृथिवीकी एकमात्र भाषा थी।"

भाषासे और समाजसे घनिष्ठ संबंध है; जिस जातिकी भाषा ऐसी उन्नतिको पहुँची थी, उसका समाज बन्धन अति उत्तम होगा, इसमें संदेह ही क्या है। जीवसमाजका प्रथम बंधन स्त्री और पुरुषका पारस्परिक सम्बन्ध है, उनमें परस्परका कैसा वर्त्ताव होना उचित है, सो आर्यशास्त्र-के अनेक ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे वर्णन किया गया है। इस शास्त्रके वात्स्यायनआदि प्रधान आचार्योंके ग्रन्थ पाठ करनेसे ही भली भाँति जान पड़ेगा कि, आर्यजातिने इस विद्यामें उन्नतिकी किस पराकाष्ठाको पहुँचाया था। पुरुष और स्त्रीके कितने भेद हैं, उन भेदोंके क्या क्या लक्षण हैं; कैसे पुरुषसे कैसी स्त्रीका सम्बन्ध होना उचित है, स्त्री और पुरुषका पारस्परिक सम्बन्ध कैसे निभानेपर इहलोक और परलोकका सुख हो सकता है, कैसे उत्तम संतति उत्पन्न हो सकती है, पुरुषके सोलह भेद और स्त्रीके सोलह भेद कैसे माने गये हैं, कौन कौन श्रेणीकी स्त्रीके साथ कौन कौन श्रेणीके पुरुषका सम्वन्ध स्थापन करनेपर धर्म और मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है, पुरुष और स्त्री परीक्षा करनेकेलिये किन

1. **India in Greece.**
2. **Historical Researches.**
3. **Bible in India.**
4. **Edinburgh Review.**

किन बातोंकी आवश्यकता है, ०कैसे एकाधारमें धर्म और कामकी प्राप्ति हुआ करती है इत्यादि नाना गंभीर विचारोंका ज्ञान इन शास्त्रोंसे होता है। यदिच नवीन यूरोप आज दिन बहिर्जगत्की उन्नतिको धारण कर रहा है और अपने बराबर किसीको भी नहीं समझता है, तथापि जर्मनी, अमेरिका, इङ्गलैण्ड और फ्रांस आदि देशोंके विद्वान् महर्षि वात्स्यायन आदिके ग्रंथोंको देखकर मोहित हो रहे हैं। समाजगठनके सम्बन्धमें आर्य्यजातिने जितनी उन्नति की थी, आजतक पृथिवीकी किसी जातिने भी वैसी नहीं की है। नदी स्रोतके अनुकूल यदि वायु भी प्रवाहित हो तो नौका जितनी शीघ्र गन्तव्य स्थानपर पहुँच सकती है, उतनी शीघ्र और किसी उपायसे नहीं पहुँच सकती; भारतकी दिव्य और पूर्ण प्रकृतिसे एक तो भारतवासियोंको प्रकृति पूर्ण हो सकती है और दूसरे आर्य्योंका तप और योगयुक्त बुद्धि, इन दोनों अनुकूलताओंने एक साथ मिलकर भारतवासियोंकी सामाजिकता और भारतवासियोंकी मनुष्यताको पूर्ण अवस्थामें पहुँचा दिया था। इसी कारण आर्य्योंकी समाजपद्धति मानव-जातिको पूर्णतापर पहुंचा देनेमें उपयोगी ही बनी थी। आर्यजातिका सदाचार, आर्य जातिकी चातुर्वर्ण्य विधि, आर्यजातिकी आश्रम चतुष्टयकी व्यवस्था, आर्यजातिका शिक्षा और दीक्षाकौशल, आर्यजातिके पितृमातृ-भक्ति, भ्रातृप्रेम, पतिपूजा, स्त्रीप्रीति, वात्सल्यस्नेह, अतिथिसेवा और जीवरक्षा आदि सद्गुण और अपूर्व धर्मसाधनविज्ञानआदिसे ही आर्योंके समाजकौशलकी श्रेष्ठता सिद्ध हो रही है। यह प्राचीन भारतके समाजविज्ञानका ही फल था कि, यहाँके ब्राह्मण ज्ञानकी इतनी उन्नत अवस्थामें पहुंचे थे कि, जिनकी शिष्यताको स्वीकार करके आज जगत्की और और जातियां ज्ञानराज्यमें विचरण कर रही हैं। यह प्राचीन भारतके समाजविज्ञानका ही फल था कि, भारतमें श्रीरामचन्द्र और भीम अर्जुन आदिके समान योद्धाओंने उत्पन्न होकर लक्षों वर्षोंतक

० शम्भुगीता।

समस्त पृथ्वीपर अपना अधिकार फैला रक्खा था। यह प्राचीन भारतके समाजविज्ञानका ही फल था जिससे भारतके वैश्योंके व्यापार और शूद्रोंके शिल्पकी उन्नतिकेद्वारा पृथिवीमें यह देश सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था और वहिर्देशोंसे इसका व्यापार इतना बढ़ा हुआ था, कि व्यापारके कारण समुद्रमें शताधिक पोत (जहाज) चलते थे। आजकलके नवीन वैज्ञानिक मुक्तकण्ठ होकर इस विषयको स्वीकार कर रहे हैं कि, यह भारतके समाजबन्धन, वर्णविभाग और विवाहपद्धति (यथा:—स्वगोत्रा कन्याके साथ विवाह न करना, पात्रका वयःक्रम पात्रीके वय क्रमसे न्यून न होना, असवर्ण विवाह न करना, स्त्री पुरुषका मेल देखकर विवाह करना, धर्म्म रीतिसे ही स्त्रीगमन करना इत्यादि) का ही फल है कि, बहुकालकी आर्य्यजाति अभीतक ठहर रही है। प्राचीन ग्रीसजाति, इजिप्सियन जाति, व्याबिलोनियनजाति और रोमनजाति आदि अनेक प्रतापशाली जातियोंके नाम इतिहासोंमें पाये जाते हैं, परन्तु आज उनका नाम ही नाम है और चिह्नतक लोप हो गया है; थोड़े थोड़े विप्लवसे ही इस संसारसे इन जातियोंका लोप हो गया है; परन्तु यह आदि आर्य्यजातिके समाजबन्धनका ही प्रभाव है कि, अगणित महाविप्लवोंको सहकर भी यह जाति अमर हो रही है। यह आर्य्यजातिके समाजविज्ञानका ही फल है कि, जिससे इस भूमिमें श्रीरामचन्द्रसे राजा, श्रीमान् जनकसे सद्गृहस्थ, सीतादेवी और सावित्रीसी कुलकामिनियाँ, ध्रुवसे बालक, महर्षि वेदव्याससे ग्रन्थरचयिता, राजर्षि मनुसे वक्ता, श्रीकृष्णसे उपदेष्टा, सिद्धवर कपिलसे साधक, परमहंस शुकदवसे ज्ञानी उत्पन्न हुए थे।



तडित्विज्ञान एवं योगशक्ति

(१३)

ऋषिकालमें तडित्विज्ञान और योगविज्ञानकी जितनी उन्नति हुई थी, वह आजकलके लोग यदि विचार करने लगें, तो तन्द्रावस्थामें स्वप्नकी नाईं अनुभव होने लगता है; उन्नतिशील पश्चिमी विद्वान् उसको यदि च स्वीकार करते जाते हैं, तथापि कारण अन्वेषण करते समय अब भी मोहित हुआ करते हैं। प्राचीन आर्य्यजातिके भोजनमें, शयनमें, बैठनेमें, चलनेमें, जलमें, स्थलमें और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्षकारक सब कर्म्मोंमें ही तडित्विज्ञानका अद्भुत संबंध देख पड़ता है। महाबली रावणने दुर्जय शक्तिशेलद्वारा सुमित्रानन्दनको जड़की नाईं स्पंदनरहित कर दिया था, सो तडित्विज्ञानकी उन्नतिका ही प्रमाण है। बाणोंमें विद्युत्शक्ति डालनेकी क्रिया अभी तक यूरोपके विद्वान् आविष्कार नहीं कर सके हैं; नागपाश, शक्तिशेल, सम्मोहन अस्त्र आदि जितने अद्भुत शक्तियुक्त अस्त्र आर्य्यगण युद्धार्थ बनाया करते थे वे, सब तडित् विज्ञानकी सहायतासे ही निर्माण करते थे। देवमन्दिरके ऊपर अष्टधातुका चक्र अथवा त्रिशूल आदि लगानेकी जो विधि है, वह विद्युत्विज्ञानकी उन्नतिका ही चिन्ह है। उत्तरकीओर सिर करके न सोना, नवीन अपक्व फलकीओर उँगली न उठाना, नीच जातिका स्पृष्ट अन्न भोजन न करना चैल, अजिन, कुश और कम्बलके आसनपर बैठकर उपासना करना, सौभाग्यवती स्त्रियोंको स्वर्णमय अलङ्कार आदि धारण करनेकी आज्ञा देना और विधवाओंको न देना आदिके नियम ही इस तड़ित्विज्ञान-उन्नतिके प्रमाण हैं। आजकलकी विज्ञान दृष्टिसे यह प्रमाणित ही हो चुका है कि, अष्टधातु बज्रपातको निवारण करता है, इस कारण मन्दिरों पर वह स्थापन किया जाता है; उसीप्रकार उत्तर सिर होकर सोनेसे

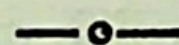
कुस्वप्न देखनेकी सम्भावना है, क्योंकि पृथिवीका स्वाभाविक तडित्-प्रवाह दक्षिणसे उत्तरकीओर प्रवाहित होता है, इस कारण उस रीतिपर सोनेसे शोणितकी गति पदकी ओरसे मस्तककीओर अधिक रूपसे हो सकती है। इसी कारण शारीरिक तडित्द्वारा अपक्वफल तब ही दूषित हो जायगा, जब उसकीओर उँगली उठायी जायगी। इसी कारण शूद्रमें तमोगुण अधिक होनेसे उसका छुआ हुआ अन्न भी उसकी दूषित तडितद्वारा दोषयुक्त हो जानेपर श्रेष्ठ तडित् युक्तब्राह्मण देहकेलिये अहितकारी ही है। पृथिवी सदा जीव शरीरान्तर्गत तडित्को खींचा करती है, उपासना करते समय मनुष्य शरीरमें सात्त्विक तडित्का बढ़ना सम्भव है; परन्तु पृथिवीपर बैठकर उपासना करते समय वह तडित्संग्रह पृथिवीद्वारा नाशको प्राप्त हो सकता है, किंतु चैल, अजिन, कुश और कम्बलमें तडित्ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं है, वे **Non Conductor** हैं। इस कारण उनपर बैठकर साधन करनेसे क्षति नहीं होगी। सुवर्ण आदि धातु तडित्शक्तिवृद्धिकारक हैं, तडित्शक्तिकी वृद्धिसे शारीरिक इन्द्रियोंमें विशेष स्फूर्ति होती है। इन्द्रियोंमें विशेष स्फूर्ति होनेसे स्त्रियाँ सुसंतान उत्पन्नकर सकती हैं; इस कारण ही आर्य्य सदाचारमें सधवा स्त्रियोंको धातुमय और रत्नमय अलंकार धारण करनेकी और विधवा स्त्रियोंको अलंकार धारण नहीं करनेकी आज्ञा दी गयी है। तडित्विज्ञानपूर्ण इन आचारोंको सुनकर साधारण बुद्धियुक्त मनुष्य भी समझ सकते हैं कि, प्राचीन आर्य्योंने इस सूक्ष्म विज्ञानको किस उन्नत अवस्थामें पहुँचा दिया था। यद्यपि नवीन यूरोप इस समय तड़ित (**Electriccity**) के प्रकट करनेकी शैलीके अनेक भेद प्राप्त कर चुका है, पदार्थ विद्या अर्थात् सायन्सकी उन्नतिके साथ ही साथ तड़ित् प्रकट करना और उससे अनेक प्रकारका काम लेना पश्चिमी विद्वान् जान गये हैं, परन्तु अभीतक वे समझ नहीं सके हैं कि, तड़ित् क्या पदार्थ है। पश्चिमी सायन्सवेत्ता विद्वान् कोई भी इस प्रश्नका

उत्तर नहीं दे सकता कि, तड़ित् क्या वस्तु हैं; परन्तु हमारे आर्यशास्त्रमें इस प्रकारकी शक्तियोंके विषयमें अनेक वर्णन पाये जाते हैं। शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है कि, ब्रह्मशक्ति महामाया—जिसको मूल प्रकृति भी कहते हैं, उसके चार प्रधान स्वरूप हैं। यथा :—स्थूलशक्ति, सूक्ष्मशक्ति, कारणशक्ति और तुरीयशक्ति। ब्रह्मकेसाथ अभेद रूपसे रहनेवाली शक्तिको तुरीय शक्ति कहते हैं। जब वह ब्रह्मशक्ति ब्रह्मसे अलग होकर एक ब्रह्माण्डके नायक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपी त्रिमूर्तिको प्रकट करनेवाली उनकी जननी बनती है, तब वही शक्ति कारणशक्ति कहलाती है। जब वह महाशक्ति ब्रह्मामें सृष्टि उत्पन्न करनेकी योग्यता, विष्णुमें सृष्टिके स्थायी रखनेकी योग्यता और रुद्रमें सृष्टि संहार करनेको योग्यताको उत्पन्न करती है, तब वह महाशक्ति सूक्ष्मशक्ति कहलाती है और जब वह ब्रह्मशक्ति स्थूल रूपको धारण करके स्थूल जगत्‌के नाना कार्योंको करती है, तब उसका नाम स्थूलशक्ति है। उस स्थूलशक्तिके ऋषियोंने सात भेद माने हैं। उन्हीं सात भेदोंमेंसे तड़ित् एक भेद है। जैसे मनुष्यशरीरके स्थूल अङ्ग नख और रोम आदि हैं, ऐसे ही उस मन वचन बुद्धिसे अतीत ब्रह्मशक्तिकी यह स्थूलशक्ति नखरोमवत् है। जैसे मनुष्यशरीरके नख रोम एक अङ्ग होनेपर भी उनके काट डालनेसे या उस कटे हुए नखसे रोमसे कुछ अलग काम लेनेसे मनुष्य शरीरको कुछ विशेष हानि नहीं पहुँच सकती, ठीक उसी प्रकार उस महाशक्तिके शरीरसे नख रोमके समान स्थूलशक्ति रूपी तड़ित् आदिको अलग करके उनसे मनुष्य पदार्थ विद्याके नाना प्रकारके कार्य ले सकता है। यह हिन्दुशास्त्रोक्त शक्तिविज्ञान यूरोपके लिये अभी दुर्ज्ञेय है। परन्तु यूरोप अब समझता जाता है कि, यह तड़ित् शक्ति सूर्यसे लेकर पृथिवीके सब स्थानोंमें पूर्ण है। विना तारकी तारवर्की (Wireless telegraphy) यहाँ तक कि, विना तारके टेलीफोन आदि पदार्थविद्याके नवीन आविष्कारोंसे पश्चिमके विद्वानोंमें

अब यह सिद्धान्त निश्चय होने लगा है कि तडित्से ब्रह्माण्डका सब स्थान पूर्ण है। जितना ही यूरोप अन्तर राज्यकीओर अग्रसर होता जायगा, उतना ही तड़ितविज्ञानका महत्त्व वह समझता जायगा।

योगविज्ञानकी मुक्तिसहायकारी जो शक्ति है, सो तो विलक्षण ही है, परन्तु इस विज्ञानकी भौतिक शक्तियोंकी अद्भुतता अब जगत्में प्रसिद्ध ही हो रही है। योगशक्तिद्वारा मेघ वायु आदिका स्तम्भन करना, शून्यमार्गसे विचरण करना, शरीरको लघु अथवा भारी कर लेना, प्रस्तर अथवा मृत्तिका आदि पदार्थमें प्रवेश करना, दूरस्थित विषयको सुनना अथवा देखना, दीर्घ आयु और इच्छामृत्युका होना, क्षुधा पिपासाका जय करना और नाना ग्रह उपग्रहोंमें संयम करके अथवा भविष्यत् प्रारब्धमें संयम करके उनके विषयोंको जान लेना आदि नाना ऐसी विभूतियोंकी प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकारकी शक्ति जीवमें कैसे प्राप्त हो जाती है, इसका प्रमाण वेद और नाना योग सम्बन्धीय शास्त्र दे रहे हैं। डाक्टर पाल (Dr. Paul.) साहबने अपने योग-विज्ञान नामक पुस्तकमें वैज्ञानिक युक्ति द्वारा पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर दिखाया है कि, प्रणायाम साधनद्वारा किस प्रकारसे योगी दीर्घायु लाभ तथा भूतजय कर सकते हैं; इस प्रकारसे उक्त पश्चिमी पण्डित महाशयने अष्टाङ्ग योगकी बहुत ही प्रशंसा करके योगके आठों अङ्गोंकी योग्यता और अद्भुत अलौकिक शक्तियोंका वर्णन अपनी पुस्तकमें किया है। प्रत्यक्ष प्रमाणमें सन्देह हो ही नहीं सकता ; जब यूरोपवासी विद्वानोंने प्रत्यक्ष दृष्टिसे पञ्जाबकेशरी महाराजा रणजीतसिंहकी सभामें योगीवर हरिदास स्वामीको छःमास तक पृथिवीके भीतर जड़ समाधि अवस्थामें रहते हुए देखा, जब उन्होंने देखा कि, एक जीवित मनुष्यको पृथिवी खनन करके गाड़ दिया गया और उसके ऊपरकी मृत्तिकापर जव बोके पहरे बिठा दिये गये, पुनः जब उनको छः महीने पूरे होनेपर निकाला गया, तो वे जीवित ही मिले; तब उन विद्वानोंके हृदयमें और कहांसे

सन्देह रहेगा ? वे विद्वान् उसीप्रकार मद्रासके योगीको कुम्भकद्वारा आकाशमें स्थित देखकर और कलकत्तेके भूकैलासस्थित योगीको श्वास-रहित समाधि अवस्थामें देखकर अतीव मोहित हुए। इन तीनों उदाह-रणोंको प्रमाण रूपसे उन्होंने अपनी अपनी पुस्तकोंमें भी लिखा है। यदिच उन्होंने प्रत्यक्ष भी करलिया है, तत्रच योगशक्तिका कारण अभी तक वे अन्वेषण नहीं कर सके हैं। योग क्रियामें जो बालक हैं, ऐसे पुरुषोंकी बस्ती, नलक्रिया और शङ्खप्रचालन आदि क्षुद्र क्रियायें जो आजकल सर्वत्र देखनेमें आती हैं, पश्चिमी विद्वान्‌गण वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा अभी तक उन क्रियाओंतकका कारण नहीं जान सके हैं। कुछ आशाजनक लक्षण अब अमेरिका और यूरोपमें प्रकट हुए हैं। वहां टेलिपेथी (Telepathy) और थाट रीडिङ्ग (Thought Reading) आदि नवीन विद्याओंके आविष्कारके साथ ही साथ भारतवर्षके अलौ-किक योगविज्ञानका कुछ कुछ छायाके समान स्वरूप वे देखने लगे हैं। विशेषत: मैडम ब्लेवेटस्की जैसी योगिनियोंके प्रभावसे यूरोप और अमेरिकावासियोंमें जो ऊंचे दर्जेके विद्वान् हैं, वे आर्योंके योगशास्त्र और उसके क्रियासिद्धांशके विषयमें अब सन्देहरहित होने लगे हैं।



ज्योतिःशास्त्रोन्नति ।

(१४)

गणितज्योतिष और फलतज्योतिष इन दोनों शास्त्रोंका आविष्कार आदि कालमें इस भारतभूमिमें ही हुआ है । केवल विद्याओंका आविष्कार ही नहीं हुआ किन्तु उनके प्रत्येक विभाग इतनी उन्नतिको पहुँचे थे कि, जिन सव विभागोंको अभीतक पश्चिमी वैज्ञानिकगण समझ ही नहीं सके हैं । यद्यपि उन्होंने आजकल यन्त्रोंकी सहायतासे गणित ज्योतिषकी कुछ उन्नति की है, तथापि फलितकी सूक्ष्मताको वे अभीतक पा ही नहीं सके हैं । प्राचीन कालमें ज्योतिःशास्त्रकी पूर्ण उन्नति नहीं हुई थी, ऐसा कोई कोई एकदेशदर्शी पण्डित कह दिया करते हैं, परन्तु आर्यशास्त्रके न देखनेसे ही वे ऐसा कहा करते हैं । ग्रह, नक्षत्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, अंश, विषुवरेखा, गोलकार्द्ध, उदीचीनराशि आदि राशिभेद, क्रान्ति, केन्द्रव्यासनिरूपण, सुमेरु, कुमेरु, छायापथ, उपग्रह, कक्ष, धूमकेतु, उल्कापिड, निर्घात, माध्याकर्षणशक्ति, सूर्य, महासूर्य आदि भेद, पृथिवी आदिकी आकृति, ग्रहणनिर्णय आदि सकल गंभीर विषयोंके सिद्धांत जब प्राचीन आर्योंके ग्रन्थोंमें देखे जाते हैं, तब कैसे कहा जा सकता है कि, प्राचीन कालमें आर्योंने इस शास्त्रकी पूर्ण उन्नति नहीं की थी । बेवर साहवने (१) ज्योतिःशास्त्रकी प्राचीनताके विषयमें कहा है कि "यह शास्त्र भारतवर्षमें खृष्ट जन्मके २७८० वर्ष पहले भी प्रचलित था ।" काउन्ट जोर्णस् जार्ना (२) साहबने कहा है कि "कलियुगके प्रारम्भसे ही अर्थात् अर्थात् पांच हजार वर्षोंके पहलेसे ही आर्य्य-

---

1. Indian Literature.

2. Theogony of the Hindus.

जातिके भीतर ज्योतिःशास्त्रका प्रचार था।" सर हन्टर साहबने (१) कहा है कि "अनेक विषयोंमें आर्यजातिका ज्योतिःशास्त्र ग्रीक ज्योतिः-शास्त्रसे उन्नत था।" कोलब्रुक साहबने (२) कहा है कि "अयनगति और पृथिवीके अपनी कक्षामें दैनिक आवर्त्तनके विषयमें जो गणित आर्यजातिने किया है, वह टोलेमी तथा अरब देशीयोंके गणितसे अधिक शुद्ध है।" प्रोफेसर विलसन साहबने (३) कहा है "आर्यजातिने ज्योतिर्विद्यामें अलौकिक उन्नति की थी। द्वादशराशिका निर्धारण, ग्रहोंकी गति, पृथिवीका शून्यमें आवर्त्तन और कक्षामें दैनिक भ्रमण, चन्द्रगति, पृथिवी और चन्द्रका दूरत्व निर्णय, चन्द्र सूर्य ग्रहणका कालनिर्णय आदि सभी बातें प्राचीन आर्यजातिकी ज्योतिर्विद्यामें पादर्शिताको ही प्रमाणित करती है।" विष्णुपुराणमें लिखा है:—

स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा।
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तमाः॥
न न्यूना नाऽतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च।
उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥
दशोत्तराणि पञ्चैव अंगुलानां शतानि वै।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने॥

ज्वार भाटासे यथार्थमें समुद्रका जल ह्रास और वृद्धिको प्राप्त नहीं होता; किन्तु थालीमें जल रखकर उसे अग्निपर चढ़ानेसे जैसे अग्नि--उत्तापद्वारा उफान आकर वह वृद्धिको प्राप्त हो जाता है, वैसे ही शुक्ल और कृष्ण पक्षकी चन्द्रकलाद्वारा आकृष्ट होकर समुद्र-जल ह्रास वृद्धिको प्राप्त हुआ करता है। आर्य्यग्रन्थोंमें ऐसे प्रमाण

1. Indian Gazetteer.

2. Elphinstoue's History of India.

3. Mill's History of India.

देखनेसे किसको विश्वास न होगा कि, आर्य्यगणको ग्रहआकर्षण शक्ति और ज्वार भाटाका कारण ज्ञात था। वार और तिथि आदिका आर्य्य महर्षिगणने ही प्रथम आविष्कार करके समयकी श्रृङ्खला की थी। सालभरमें जिस दिन दिवा रात्रि समान होते हैं, वह दिन, यूरोपीय पण्डित टोलेमी (Tolemny)—जिसको यूरोपीयनजाति इस नियमका आविष्कर्त्ता मानती है—उसके जन्म लेनेसे बहुत काल पूर्व ही प्राचीन आर्य्य आचार्य्यगण द्वारा निरूपित हो चुका था। सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थमें लेख है :—

सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।
कदम्बकेशरग्रन्थिकेशरः प्रसवैरिव ॥

कदम्ब जिस प्रकार केशरसमूहद्वारा वेष्टित होता है, उसीप्रकार पृथिवी भी ग्राम, वृक्ष, पर्वतआदि द्वारा वेष्टित है। नक्षत्र कल्पमें लिखा है:—

कपित्थफलवद्विश्वं दक्षिणोत्तरयोः समम्।

कपित्थ फलकी तरह पृथिवी गोलाकार है, परन्तु केवल उत्तर और दक्षिणमें कुछ समान अर्थात् दबी हुई है। जब पश्चिमी विद्वान् पृथिवीको नारङ्गीके साथ उपमा देते हैं, तब आर्यगणको कदम्ब और कपित्थके साथ उपमा देते देख क्या विद्वान्गण-नहीं समझ सकेंगे कि, प्राचीन आर्यगण पृथिवीके स्वरूपको पश्चिमी वैज्ञानिकगणसे पूर्व ही भली भाँति जानते थे। आज कल विद्यार्थियोंकी शिक्षाके अर्थ गोलक (globe) प्रस्तुत किया जाता है; परन्तु जब प्राचीन आर्य्यग्रन्थोंमें देखते हैं कि, वे भी शिष्योंको दारुमय खगोल और भूगोल रचनाद्वारा शिक्षा दिया करते थे, तब कौन बुद्धिमान् नहीं विश्वास करेंगे कि, वे भी इस नवीन रीतिको भली भाँति जानते थे। आजकलकी शिक्षामें प्रधान दोष यह कि भारतवासी पूर्ण शिक्षाको प्राप्त नहीं करते। पश्चिमी अंग्रेजी भाषा

या संस्कृत विद्या, चाहे किसीमें वे परिश्रम क्यों न करते हों उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं करते। द्वितीयतः अपने वर्त्तमान भ्रमोंके दूर करनेके अर्थ दोनों शास्त्रोंका भली भाँति संग्रह करके तत्पश्चात् दोनोंके गुणोंका विचारकर सत्यका अन्वेषण करें, तो उसका अनुसंधान पा सकेंगे; नहीं तो एक विद्याको ही असम्पूर्ण जानकर सत्य अनुसंधान करना वृथा श्रममात्र है इसमें सन्देह नहीं। आर्य्यभट्टजीने लिखा है :—

चला पृथ्वी स्थिरा भाति।

पृथिवी चलती है परन्तु ठहरी हुई जान पड़ती है। पुनः आर्य ग्रन्थोंमें लेख है :—

भपंजरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदिवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम्॥

नक्षत्रमंडल और राशिचक्र स्थिर हो रहे हैं परन्तु पृथिवी वार-वार घूमती हुई ग्रह नक्षत्रोंका दैनिक उदय अस्त सम्पादन किया करती है। इन लेखोंको देखनेसे कौन नहीं विश्वास करेगा कि, प्राचीन आर्य्यगण पृथिवीकी गतिको जानते थे। जब आचार्य्योंके ग्रन्थोंमें देखते हैं:—

भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।

पृथिवी शून्यमें स्थित ही है; पुनः जब भास्कराचार्य्यको कहते हुए देखते हैं:—

नान्याधारं स्वशक्त्या वियति च नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे।
निष्ठं विश्वं च च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समंतात्॥

पृथिवी विना आधारके ही अपनी शक्तिद्वारा आकाशमण्डलमें स्थित है और उसके पृष्ठपर चारोंओर देव दानव मानव आदि निवास कर रहे हैं; तब कैसे विश्वास नहीं करेंगे कि, आर्यगण पृथिवीकी स्थितिको भली भाँति जानते थे। जब ब्रह्मपुराणमें देखते हैं:—

पर्व्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ छादयिष्यसि।
भूमिच्छायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन॥

पूर्णिमा आदि पर्व्व दिनोंमें तुम चन्द्र सूर्यको आच्छादन करोगे; कभी पृथिवीकी छायारूपसे चन्द्रको और कभी चन्द्रकी छायारूपसे सूर्यको आच्छादित करोगे; पुनः ज्यौतिषाचार्य्योंके ग्रन्थोंमें देखते हैं :—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत्।
भूच्छायां प्रमुखश्चन्द्रो विशत्यर्थो भवेदसौ॥

मेघके समान चन्द्र, सूर्य्यके अधःस्थ होकर सूर्य्यको आच्छादित करता है और चन्द्र भूच्छायामें प्रवेश करता है; तब कौन बुद्धिमान् नहीं जान सकते हैं कि, प्राचीन भारतवासी ग्रहण-विज्ञानको भली भाँति जानते थे। इस प्रकारसे ज्योतिःशास्त्रकी उन्नतिके विषयमें जितना विचार करेंगे उतना ही सिद्धान्त दृढ़ होता जायगा कि, इस गंभीर विज्ञानशास्त्रमें प्राचीन भारतने बहुत ही उन्नतिकी थी। यूरोपके प्रसिद्ध विद्वान् बेली (Bailly) साहब, प्लेफेयर (Playfair) साहब और केशेनी (Casseni) साहब आदि बड़े-बड़े पण्डितगण मुक्तकण्ठ होकर स्वीकार करते हैं कि, पांच सहस्र वर्षोंके पूर्व्व भारतवर्षमें जो ज्योतिष ग्रन्थ लिखे गये थे वे, अब भी मिला करते हैं; भारतवर्ष ही ज्योतिःशास्त्रका आविष्कारकर्ता है। वर्त्तमान कालके प्रसिद्ध ज्योतिःशास्त्रके अध्यापक कोलब्रुक (Colebrooke) साहब प्रमाणके सहित लिखते हैं कि, अति प्राचीनकालमें ज्योतिष गणनाकी प्रधान सहायक पृथिवीकी अयनांशगति अथवा क्रांतिपातकी वक्रगतिका भारतवर्षके विद्वानोंने ही आविष्कार किया था। प्राचीन आर्य्यजाति ही इस शास्त्रकी प्रधान गुरु है, ऐसा एकदेशदर्शी मुसलमान भी स्वीकार करते हैं आरबीय "त्वारिकल हुक्म" और "खुलाश तुल हिसाब आदि ग्रंथोंमें इस विचारका भली भाँति प्रमाण मिलता है। उन्होंने अपने ग्रथोंमें आर्य्यभट्टका नाम "आज्य-

भर" और भास्कराचार्य्यका नाम "बाखर" करके लिखा है। इन विचारोंसे यह सिद्ध ही होता है कि, इसप्रकारके गंभीर वैज्ञानिक तत्त्वों तथा वैज्ञानिक शास्त्रोंका आदिगुरु भारतवर्ष ही हैं। भारतकी इस श्रेष्ठताको ईसाई तथा मुसलमानआदि सभी स्वीकार करते हैं और इसीसे यह मत सर्व्ववादिसम्मत है।

विना गणितज्योतिषके फलितज्योतिष कार्य्यकारी नहीं होता, इस कारण भारतका फलितशास्त्र ही गणितशास्त्रकी उन्नतिका प्रमाण है। आजकलके यूरोपीय सम्वादोंका पाठ करनेसे बुद्धिमान् मात्र ही जान सकेंगे कि, आज दिन यूरोपवासी किसप्रकारसे मिटिओरोलोजी (Meteorology) विद्यापरसे अपनी दृष्टि हटाकर फलितज्योतिषकी सत्यताकीओर झुकते जाते हैं। आज यूरोपका यह फलितज्योतिषका पक्षपात ही हमारे इस गणित एवं फलित ज्योतिष विषयक सिद्धान्तको पूर्णरूपसे दृढ़ कर रहा है।

—०—

पदार्थविद्याका प्राचीनत्व।

(१५)

पश्चिमी विद्वान् यह कहते हैं कि, पदार्थविद्या अर्थात् सायन्सकी उन्नति प्राचीन भारतमें नहीं थी, क्योंकि माध्याकर्षण शक्तिका आविष्कार करनेवाले न्यूटन (Newton) साहब हैं; परन्तु जब देखते हैं कि, श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशमें पृथिवीकी माध्याकर्षण-शक्तिका विस्तृत विवरण आया है, जब देखते हैं कि, भास्कराचार्य्यजीने लिखा है :—

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थो गुरुः स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीति भाति समे संमतात् क्व पतत्वियं खे॥

पृथिवी आकर्षणशक्तिविशिष्टा है; क्योंकि कोई भारी पदार्थ आकाशकीओर उछालनेपर पृथिवी अपनी शक्तिद्वारा उसको आकर्षण कर लेती है; आकाश चारोंओर ही है, परन्तु वह पदार्थ पृथिवीके ऊपर ही गिरता है; पुनः जब देखते हैं कि, आर्य्यभट्ट कह रहे हैं :—

आकृष्टशक्तिश्च मही तत्तया प्रक्षिप्यते तत्तया धार्य्यते।

पृथिवी आकर्षणशक्तिविशिष्ट है; क्योंकि जो वस्तु फेंकी जाती है, आकर्षण शक्तिद्वारा पृथिवी उसको धारणकर लेती है; तब कैसे कहेंगे कि, न्यूटन साहब इस सायन्सके आविष्कर्त्ता हैं; जब न्यूटन साहबके जन्मग्रहण करनेसे सहस्रों वत्सर पूर्वके ग्रन्थोंमें उस विज्ञानका प्रमाण मिल रहा है, तब कैसे मानेंगे कि, वह नियम भारतसे नहीं निकला, यूरोपसे निकला है।

अभी थोड़े दिन हुए, यूरोपवासियोंने नाना यंत्रोंकी सहायतासे सूर्य्यकलंकका (Solar spots) अनुमान किया है और वे कहते हैं कि, यह उनका नूतन आविष्कार है; परन्तु आर्य शास्त्रोंको देखनेसे अति सुगमताद्वारा ही यह भ्रम दूर हो सकता है। विष्णु और मार्कण्डेय आदि पुराणों और वराहमिहिर आदि ज्योतिष संहिताओंमें इसका विशेष विवरण पाया जाता है। पुराणोंमें लेख है कि, विश्वकर्माने जब अपने भ्रमी नामक यन्त्रका सूर्यमण्डलपर प्रयोग किया था, तब उस अस्त्रका सूर्य्यमण्डलके जिस जिस अंशमें स्पर्श हुआ, वही वही अंश श्यामिकाको प्राप्त हो गया और उसी उसी अंशको सूर्य्य-कलंक कहते हैं। ग्रीक भाषाके ग्रंथ, रोमन भाषाके ग्रन्थ, अरबी भाषाके ग्रन्थ तथा नानायूरोपीय भाषाओंके ग्रन्थोंसे जब यही सिद्ध होता है कि, प्राचीन आर्य्यजाति ही सकल मनुष्यजातियोंसे पहिले अपनी भारतभूमिमें शिल्प नैपुण्य तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी प्रकाशकर्त्री थी, जब प्राचीन महर्षि-

गणके नाना ग्रंथोंमें ज्योतिष विद्या, रसायन विद्या, भूतत्त्व विद्या, चिकित्साविद्या और अतुलनीय योग आदि विद्याका वर्णन देखते हैं, तब निरपेक्ष विद्वान् मात्र ही स्वीकार करेंगे कि, प्राचीन भारत ही विद्याको उन्नतिका आदिगुरु है।

ज्ञान-विज्ञान-उन्नतिके विषयमें प्राचीन आर्य्यजाति किसप्रकार अलौकिक शक्तिसम्पन्न थी, सो प्राचीन इतिहास पाठ करनेसे विदित होता है। मृत पुरुषका पुनर्जीवन लाभ,—जो कि आजकल कल्पनामें भी नहीं आ सकता—प्राचीन भारतके इतिहासमें बहुधा देखनेमें आता है। दैत्यगुरु शुक्राचार्य्यने मृत संजीवनी विद्याके प्रभावसे रणाहत मृत दैत्योंको पुनर्जीवित किया था। अतिवृद्ध कङ्कालसार च्यवन ऋषिका नवयौवन लाभ इत्यादि सभी बातें प्राचीन अलौकिक ज्ञान-विज्ञानोन्नतिको अपूर्व परिचायक हैं, जिसको निष्पक्ष-विचारशील पुरुष अवश्य ही स्वीकार करेंगे। जिसप्रकार पहाड़पर रहनेवाले किसी मनुष्यसे, जिसने कभी रेलगाड़ी नहीं देखी है, पृथ्वीपर १ घंटेमें ६० मील जानेवाली भी वस्तु हो सकती है, ऐसा कहा जाय, तो वह हँसकर उड़ा देगा परन्तु उसका ऐसा उड़ाना केवल अपना ही अज्ञान और मूर्खताका प्रकाश करना है; ठीक उसीप्रकार आज हमारी शक्ति नष्ट हो गयी है, इसको न स्वीकार करके जो कुछ प्राचीन बातें हमारी समझमें नहीं आती, उन्हें गपोड़ा समझकर उड़ा देना, वृथा अहङ्कार, उन्माद और मूर्खताका परिचायक मात्र है। धीर और निष्पक्ष विचारशील पुरुष ऐसा कभी नहीं करते। ज्ञान समुद्र अनन्त है, उसका पूरा पता कौन लगा सकता है ? आज पाश्चात्य जगत्में कितने ही नये सायन्सोंका आविष्कार हो रहा है। जिन बातोंको लोग पूर्ण असम्भव जानते थे, वे ही आज सत्य हो रही हैं। इससे क्या यह सिद्धान्त नहीं निकलता कि, जो लोग उन सब सायन्सोंके आविष्कारके पहिले उन्हे असम्भव कहा करते थे, वे सब भ्रान्त थे और यदि आजसे ४०० वर्षोंके बाद येही सब

सायन्सोंके आविष्कार करने वाले लोग मर जायँ, कोई भी ऐसे पुरुष जीते न रहें जिससे ये सायन्स ही नष्ट हो जायँ, तो इन ४०० वर्षोंके बाद जो लोग उत्पन्न होंगे, वे भी क्या इन सब सायन्सकी बातोंको किसी पुस्तकमें देखकर गपोड़ा-पुराण नहीं समझेंगे ? कालकी रहस्यमयी गति को कौन जान सकता है ? इसमें साहङ्कार स्पर्द्धाकी अपेक्षा धीर होकर ऐसे विषयोंको मानना और मनुष्यबुद्धिको परिच्छन्न समझना ही सत्य और युक्तियुक्त है।

इञ्जिनियरिङ्ग (Engineering) पदार्थविद्या प्राचीन कालमें कितनी उन्नत हुई थी, रामेश्वरका सेतुबन्ध तथा उड़ीसाके कोणार्क और भुवनेश्वर, पुरी आदिके मन्दिर इत्यादि इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। कोणार्कके मन्दिरके पत्थरोंका काम देखकर पश्चिमी इञ्जिनियर लोग अभीतक चकित होते हैं। उनको अभीतक यह समझमें नहीं आता है कि, ये पत्थर कहाँसे लाये गये, कैसे लाये गये और कैसे ऊपर चढ़ाये गये। मिनरॉलॉजी (Minorology) अर्थात् खनिज पदार्थ विद्याकी उन्नतिका प्रमाण तो स्पष्ट ही है। सोना, चाँदी आदि सबप्रकारके धातु और हीरा, पन्नाआदि सबप्रकारके रत्नोंका उत्तमतासे प्राप्त करना और उनका सद्व्यवहार करना भारतवासी ही जानते थे। और बेकटिरिओलॉजी (Bacteriology) अर्थात् स्वेदज सम्बन्धीय पदार्थ-विद्याकी तो भारतवर्षमें पराकाष्ठा ही होगयी थी। अभीतक यूरोपने तो दस बीस तरहके स्वेदज जीव (Germs) का ही आविष्कार किया है। प्राचीनकालके आर्य आचार्योंने कहा है कि, स्वेदज जीव येनिकी संख्या ग्यारह लक्ष है। इसीसे यह प्रमाणित होता है कि, वे इस विद्यामें पारङ्गत थे। तुलसीपत्रकी पवित्रता और रोगबीजनाशकारिता, गोमयकी पवित्रता और रोगबीजनाशकारिता इत्यादि हिन्दु सदाचारसे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंके गुणोंको देख यूरोपके पदार्थविद्याकुशल विद्वान् चकित होते हैं और वे स्वीकार करते हैं कि, विना इस विद्याके जाने प्राचीन हिन्दुगण

ऐसे पदार्थोंका आदर कदापि नहीं कर सकते थे। गङ्गाजीकी पवित्रता और आधिव्याधि दूर करनेकी शक्तिके विषयमें यूरोप जितना जानता जाता है, उतना ही मोहित और चकित होता है। बेकटिरिओलॉजी (Bacteriology) विद्याके प्रसिद्ध विद्वान् डा० हङ्किनस् (Dr. Hankins) ने श्रीगङ्गाजीकी महिमाके विषयमें जो कुछ अनुसंधान किया है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है। उन्होंने यह प्रमाण पाया है कि, कैसे ही कठिन रोगके कीट क्यों न हों, वे छः घण्टोंके भीतर गङ्गाजलमें मर जाते हैं। जो रोगकीट कूप अथवा अन्य नदीके जलमें घण्टेके भीतर अगणितरूपसे बढ़ जाते हैं, गङ्गाजल स्पर्श करते ही वे मरने लगते हैं। यमुनाजलकी भी महिमा उन्होंने बतायी है और यह स्वीकार किया है कि, इस सायन्सको हिन्दुओंने ऐसे समयपर सीखकर पराकाष्ठाको पहुँचाया था कि, जिस समय यूरोप असभ्यताके अन्धकारमें ही डूबा हुआ था। *

हिन्दुस्थानके सुप्रसिद्ध पदार्थविद्याके जगत्प्रसिद्ध आचार्य डाक्टर जगदीशचन्द्र वसु महाशयने जो स्थावर सृष्टिमें जीवसत्ता और इन्द्रियोंके

* Mark Twain, speaking of soma test by Mr. Hankins the Scientist in Government employ at Agra in connection with the water of the Ganges, remarks in his 'More Tramps Abroad' :—(Page 343—44).

"It had long been noted as a strange thing that while Benares is often afflicted with the Cholera she does not spread it beyond its borders. This could not be accounted for. Mr. Hankins, the Scientist in the employ of the Government at Agra conclude to examine the water. He went to Benares and made his tests. He got

अस्तित्वको पदार्थविद्याके क्रियासिद्धांश (Scientific demonstration) केद्वारा प्रमाणित करके समस्त पृथ्वीके सायन्सवेत्ताओंको चकित कर डाला है, ये सब बातें महाभारत आदि आर्यग्रन्थोंमें पहलेसे ही वर्णित थीं। इन सब सायन्सके आविष्कारोंको देखकर कौन बुद्धिमान् व्यक्ति इस बातको स्वीकार नहीं करेगा कि, प्राचीन आर्योंने पदार्थविद्यामें भी बहुत कुछ उन्नति की थी। बङ्गालके सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्रके पण्डित प्रोफेसर डाक्टर पी० सी० राय महाशयने पुस्तक-प्रणयनद्वारा पश्चिमी विद्वानोंको यह भली-भाँति समझा दिया है कि, रासायनिक विद्या (Chemistry) में प्राचीन आर्यगणने इतनी उन्नति की थी कि, उन सब उन्नतिकी बातोंको अभीतक यूरोपीय रासायनिक समझ नहीं सके हैं। उदाहरणके तौर पर कहा जाता है कि, मकरध्वज नामक आयुर्वेदीय औषधिमें सुवर्णका पारेमें मिल जाना सिद्ध होनेपर भी पश्चिमी-रासायनिकगण अभी तक कह नहीं सके हैं कि, कैसे ऐसा हो जाता है। प्राचीन कालमें एक धातुके दूसरे धातुमें परिणत करनेको जो क्रियायें तन्त्रमें पायी जाती हैं, वे यद्यपि इस समय लुप्तप्राय हो गयी हैं तथापि, उनके भारतीय पदार्थविद्याद्वारा प्राचीनकालमें सुसिद्ध होनेके विषयमें कोई संशय नहीं हो सकता। यद्यपि पदार्थ-विद्याके जगत्में अभी बहुत कुछ

(Continued from page 83.)

water at mouths of the sewers where they empty into the river at the bathing ghats; a cubic centimetre of it contained millions of Cholera germs; at the end of six hours they were *all dead.* He caught a floating corpse, towed it to the shore, and from beside it he dipped up water that was swarming with Cholera germs, at the end of six hours they were *all dead,*

आविष्कार होने हैं और जितना-जितना आविष्कार होता जायगा, उतना-उतना भारतीय प्राचीन गौरवका भी पता लगता जायगा, तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि, प्राचीन भारतवासी पदार्थविद्यामें बहुत कुछ अभिज्ञ थे। केवल उनकी दृष्टि अध्यात्मराज्यकीओर अधिक रहने-केकारण वे आवश्यकतासे अतिरिक्त पदार्थविद्यामें उन्नतिका प्रयोजन नहीं समझते थे।

—:o:—

(Continued from page 84.)

"He added swarm after swarm of Cholera germs to this (Ganges) water; within six hours they always died, to the last sample. Repeatedly he took pure well-water which was barren of animal life and put into it a few Cholera germs; they always began to propagate at once and always within six hours they swarmed and were numberable by millions upon millions. For ages the Hindus have had absolute faith that the water of the Ganges was utterly pure, could not be defiled by any contact whatsoever, and infallibly made pure and clean whatsoever thing touched it. They still believed it, and that is why bathe in it and drink it. The Hindus have been laughed at these many generations, but the laughter will need to modify itself a little from now on. How did they find out the water's secret in those ancient

इहलोक एवं राजनीति

(१६)

ऐहलौकिक नियम तथा राज्यशासननीतिप्रचारमें प्राचीन भारतवासी ही सर्वोत्कृष्ट थे। सांसारिक शृंखला तथा प्रजाशासन नियमके प्रचारमें पूज्यपाद महर्षिगण ही इस पृथिवीपर आदि और सर्वश्रेष्ठ गुरु थे, इसमें सन्देहका लेशमात्र नहीं। सूक्ष्म विचारद्वारा यही सिद्ध होता है कि पारलौकिक सुखके प्राप्त करनेमें इस लोकमें त्याग स्वीकार करना पड़ता है, परन्तु ऐहलौकिक सुख तभी हो सकता है, जब जीवको अभाव अनुभव न हो; त्यागमें अभाव अनुभव है, परलोकसुखकी इच्छामें अभाव अनुभव है, किन्तु ऐहलौकिक सुखमें उससे विपरीत होता है; अर्थात् अभाव द्वारा ऐहलौकिक दुःखकी वृद्धि और अभावके कम होनेसे ऐहलौकिक सुखकी वृद्धि हुआ करती है। इसी वैज्ञानिक भित्तिपर स्थित

(Continued from page 85)

ages ? Had the germscientists then ? We do not know. that they had a civilization long beforc we emerged from savagery."

In confirmation of this may be quoted what the Indian Medical Gazette notes :—

"It would appear as if modern science was coming to the aid of the ancient tradition in maintaining a special blessedness of the water of the Ganges. Mr. E. H. Hankins in the preface to the fifth edition of his excellent pamphlet 'on the Cause and Prevention of Cholera' writes as follows :—

होकर पूज्यपाद महर्षियोंने जो इस लोकमें जीवनयात्रानिर्वाह करनेकी सुगम तथा अभ्रान्त युक्तियां निकाली थीं, उन्हीं नियमोंपर चलनेकेकारण ही आजदिन भारतके इस घोर आपत्ति कालमें भी भारतवासी कथंचित् सुखी हो रहे हैं। गवर्नमेन्टकी रिपोर्ट आदि सम्वादोंसे भली भांति सिद्ध हो सकता है कि, प्रत्येक भारतवासीकी साधारण मासिक आय (आमदनी) ३) रुपयेसे अधिक न होगी, परन्तु प्रत्येक इङ्गलैन्डवासीकी आय कमसे कम ९०) रुपया है। पुनः सरकारी जेल रिपोर्टसे सिद्ध होता है कि जेल-खानेके कैदियोंके निमित्त प्रति मनुष्य मासिक ३।।) रुपये व्यय पड़ा करता है; इस विचारद्वारा यही सिद्ध होता है कि, आज भारत-वासियोंकी आय जेलखानेके कैदियोंके भोजनव्ययसे भी कम है। कालप्रभाव, अपनी निरुद्यमता और विदेशीय स्वार्थके कारण भारतवासी आज इतनी हीन अवस्थाको पहुँच गये हैं कि, दोनों समय पेट भरकर खाने योग्य आय उनको नहीं होती। ऐसी हीन अवस्थाको प्राप्त होकर भी भारतवासी सदा प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करते हैं। यह प्राचीन आर्य्यजातिके शिक्षाप्रभावका ही कारण है कि, इस घोर आपत्कालमें भी भारतवासी जीवनधारण कर रहे हैं। इस श्रेष्ठताका कारण जीवनयात्राकेलिये अभावकी न्यूनता ही है; ऐहलौ-

---

(Continued from page 86)

"Since I originally wrote this pamphlet I have discovered that the water of the Ganges and the Jumna is hostile to the growth of the Cholera microbe, not only owing to the absence of food materials, but owing to the actual presence of an antiseptic that has the power of destroying this microbe. At present I make no suggestion as to the origin of the mysterious antiseptic."

किक कार्य्योंमें भारतवासी स्वभावसे ही अभाव कम रखते हैं, इस कारणसे ही वे आज जीवित रह सके; जैसी अवस्था एवं शिक्षा यूरोपवासियोंकी आज है। यदि कदाचित् उनपर यह आपत्तिकाल आ पड़े तो कदापि वे अपने मनुष्यके उपयोगी वृत्तियोंकी रक्षा नहीं कर सकेंगे। प्राचीन आर्य्यजातिके ऐहलौकिक सदाचार तथा उत्तम शिक्षाके विषयमें पश्चिमी पण्डित मोनियर विलियम्, पण्डित विलसन, पण्डित काटन आदिने भली भाँति वर्णन किया है। भारतवासियोंकी शिक्षा तथा यूरोपवासियोंकी शिक्षामें कितना अन्तर है, भारतवासियोंके ऐहलौकिक अभाव तथा यूरोपवासियोंके ऐहलौकिक अभावमें कितना भेद है, इसको उदाहरणद्वारा देखनेसे ही प्रतीत हो सकता है।

इसप्रकार यूरोपीय जातिकी ऐहलौकिक अवस्था तथा आर्य्योंकी ऐहलौकिक अवस्थापर जितना ध्यान दिया जायगा, उतना ही सिद्धान्त होगा कि, भारतवासी अपने अभावोंके अनुभवमें बहुत ही न्यून हैं, और अभावन्यूनताके कारण वे सकल अथस्थाओंमें एक प्रकारसे सुख अनुभव कर सकते हैं। भारतवासी चाहे धनाढ्य हों अथवा निर्धन, उन्नत हों अथवा अवनत, वे अपने इस सादापन तथा अभावन्यूनतासे सकल अवस्थाओंमें सुखी रहकर अपनी आध्यात्मिक उन्नतिद्वारा पारलौकिक मङ्गलसाधन कर सकते हैं।

हिन्दुजातिकी वर्णाश्रम व्यवस्थाको एकओर रखकर और वर्त्तमान यूरोपीय बोलशेविजम (**Bolshevism**) पद्धतिको दूसरीओर रखकर यदि मिलान किया जायगा, तो साधारण बुद्धिमान् मनुष्य भी जान सकेगा कि, मनुष्य समाजमें ऐहलौकिक सुखको स्थायी रखनेकेलिये और एकाकारकी निरङ्कुशतासे मनुष्यसमाजको बचानेकेलिये प्राचीन आर्य्यजातिने कैसा दृढ़ नियम बांधा था। यदि वर्त्तमान बोलशेविजमके प्रबल प्रवाहके वेगसे मनुष्य जातिको कोई रोक सकता है, तो वर्णाश्रमका दृढ़ बाँध ही उसको रोक सकता है। इस समय पृथिवीके

सर्वत्र जो मजदूर दल (Labour) और धनी दल (Capital) का घोर संघर्ष उपस्थित हुआ है जिसका परिणाम कैसा भयानक है, सो अभी सोचनेमें भी नहीं आ सकता है। प्रबल पराक्रांत रोमन साम्राज्य इस समयके सभ्यजगत्‌में आदर्श साम्राज्य है। प्रजातन्त्र राज्य वर्त्तमान कानूनआदि सब बातें इस समयके सभ्यजगत्‌ने रोमन जातिसे सीखी हैं। इस समयकी सभ्यताका रोमनसभ्यता आदर्श है, इसको सभी लोक स्वीकार करते हैं। ऐसे प्रबल पराक्रान्त और सभ्यजगत्‌की आदर्श रोमन जातिको यूरोपकी असभ्य जातियोंने आकर लूटखसोट कर नष्ट कर डाला। असभ्य पशुप्राय जातियोंने रोमनजातिके एक मनुष्यको भी जीवित नहीं छोड़ा। इस समयकी जो इटालियन आदि जातियाँ हैं, वे सब अन्य नाना जातियोंकी सङ्करतासे उत्पन्न हुई हैं। उसी शैलीपर आजकलके दूरदर्शी विद्वानोंकी यह सम्मति है कि, यदि यूरोप न सम्हल सका, तो कालान्तरमें मजदूर ही उन रोमनाशक असभ्य जातियोंकी तरह यूरोपीय सभ्यताका ग्रास करने वाला होगा। वर्त्तमान यूरोपकी धर्म भावहीन सामाजिक प्रथाके परिणामसे उस समाजके भीतरसे ही एक असभ्य मजदूर श्रेणी ऐसी उत्पन्न होगी, जो वर्त्तमान सभ्य यूरोपको खा जायगी। इस विचारको एकओर रख-कर यदि दूसरीओर प्राचीन हिन्दुजातिके जातिगत शिल्प, कृषि, वाणिज्य आदि व्यवस्थाको रक्खा जाय, तो यह मानना ही पड़ेगा कि आर्य जातिकी शैलीमें इसप्रकारके संघर्षकी सम्भावना ही नहीं थी और जब आर्य्य जाति कर्मसे जाति आयु भोग और जन्मान्तरको मानती है है, तो आर्यजातिके समाजमें इस प्रकारका विप्लव भी नहीं हो सकता था। अब पश्चिमी चिन्ताशील विद्वान् इस बातको स्वीकार करने लगे हैं कि, हिन्दु जातिकी सब मिलकर एकान्नवर्ती रहनेकी शैली, उसके पुरुषभावसे स्त्रीभावके स्वतन्त्र रखनेकी शैली पातिव्रत पालनकी परा-काष्ठाकी शैली, गृहको एक छोटा राज्य मानकर गृहपतिको उसके अधि-

पति रूपसे सम्मान करनेकी शैली, हिन्दु समाजमें विद्यागुरुके विशेष सम्मानकी शैली, दीक्षागुरु और धर्माचार्यको भगवान्के प्रतिनिधि समझकर प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति करनेकी शैली, प्रजावत्सल राजाको अष्टलोकपालको मूर्ति समझकर राजभक्ति प्रदर्शन शैली, समाजमें ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, जातिवृद्ध, आश्रम वृद्ध आदि पूज्यजनोंकी पूजा करनेकी शैली, पिता माताको प्रत्यक्ष देवता मानकर प्रगाढ़ श्रद्धा करनेकी शैली, आतिथि चाहे किसी जातिका हो, उसको नारायण समझकर यथायोग्य सेवा करनेकी शैली आदि सदाचार इतने दूरदर्शितापूर्ण हैं कि, इनकेद्वारा समाजमें ऐहलौकिक सुख और शान्ति स्वतः ही बनी रहती हैं। इन सदाचारोंसे विशेष लाभ यह है कि, इससे प्रजा केवल अर्थकामको ही मुख्य मानकर निरङ्कुश और पतित नहीं हो सकती है और क्रमशः आत्माकीओर लक्ष्य रखती हुई इहलोकमें शान्तिसुख भोगकर परलोकके आध्यात्मिक उन्नतिके द्वारको उन्मुक्त कर सकती है।

पूज्यपाद आर्यमहर्षियोंकी दूरदर्शिताका ही यह पूर्वोक्त फल है और उनकी दूरदर्शिताद्वारा ही भारतकी राजनैतिक अवस्था भी सकल समयकेलिये एकरूप मंगलकारी है। राजनीतिके विचारमें प्राचीन आचार्य्योंने इतनी दूरदर्शिता तथा अभ्रान्त बुद्धिका परिचय दिया है कि, आज पृथिवी सब जातियोंमेंसे उतनी योग्यता कोई जाति भी दिखा नहीं सकती है। राजनीतिके विचारमें यदिच आज यूरोपीय जातियोंने नाना नूतन आविष्कार कर दिखाये हैं परन्तु उनका राजनीतिविज्ञान सदा परिवर्तनशील ही देखनेमें आता है। किन्तु आर्य्य राजनीति अपरिवर्तनशील तथा दृढ़ है। यूरोपने आज लिबरल (Liberal) कंजरवेटिव (Conservative) आदि मंत्री सभागठनकी प्रणाली तथा राजतन्त्रराज्यशासनप्रणाली (Limited Monarchy) आदि राजतन्त्रराज्यशासनप्रणाली आदि नाना राजनैतिक आविष्कार किये हैं, किन्तु आर्य्य विज्ञानके सन्मुख ये सब असम्पूर्ण ही हैं। प्रजातन्त्रराज्यशासनप्रणाली (Repu-

blican form of Government) वह है, जिसके नियमानुसार प्रजा ही राजा और प्रजा ही दोनोंका कार्य करती है, अपनी प्रतिनिधि सभाको नियत करती है, उसके चुनावमें सबको समान अधिकार देती है और प्रजाओंमेंसे एक सभापति चुनकर किसी नियत समयकेलिये उसको राजाधिकार देती है। यह राज्यशासनप्रणाली आरम्भमें मधुर होनेपर भी भविष्यत् भयसे शून्य नहीं है। सृष्टिकौशलविचारद्वारा भारतवासियोंने यह निश्चय कर लिया है कि, जीवमें ज्ञानप्रभेद रहना स्वतःसिद्ध है, इस कारण उसमें गुरुशक्ति तथा लघुशक्तिका विचार रखना भी अपरिहार्य है; प्रजासे लेकर राजातक, मूर्खसे लेकर विद्वान्तक, अज्ञानीसे लेकर ज्ञानवान् तक, सब प्रकारके अधिकारियोंमें लघुशक्ति तथा गुरु, शक्ति, प्रजा तथा राजभाव, शिष्य तथा उपदेशक भाव, आज्ञाकारी तथा आज्ञाकारक भावोंकी स्वतन्त्रता रहना अवश्यसम्भावी है। इस अभ्रान्त सिद्धान्तकेअनुसार एकमात्र प्रजा राजशक्ति तथा प्रजाशक्तिका कार्य्य चिरकालतक पूर्णरूपसे निर्वाह नहीं कर सकती। यदि प्रजाको किसी कौशलद्वारा पूर्णरूपसे राजपदका भी भार दे दिया जाय, तो एक न एक समयमें उनका यह अधिकार उनके ही आपत्तिका कारण हो जायगा; क्यों कि जबतक प्रजातन्त्रराज्यमें प्रजा धार्मिक, न्यायवान्, विद्वान् और नीतिज्ञ बनी रहती है, तभीतक देशमें सब प्रकारकी शान्ति रहती है। किन्तु इसके विपरीत होने पर अर्थ, काम तथा राजशक्तिके उन्मादमें विलासिता बढ़ते ही राष्ट्रविप्लव होने लगता है, जिसका उदाहरण प्राचीन रोमन साम्राज्य है। इसी अभ्रान्त प्राकृतिक नियमके अनुसार फ्रांस देशमें अनेकवार राजनैतिक विप्लव हुए और बुद्धिमानोंका यही विचार है कि, भविष्यत् कालमें भी फ्रांस तथा अमेरिका आदि प्रजातन्त्र राज्योंमें पुनः घोर राज्यविप्लव होगा, इसमें सन्देह नहीं। इसी वैज्ञानिक विचारपर स्थित होकर प्राचीन आर्य्योंने अपनी दृष्टि इस प्रकारकी स्वतन्त्रताकीओर कभी डाली ही नहीं। प्रजातन्त्र (Repub-

lican form of Government) राज्य प्रणालीके विषयमें ऐसा मत केवल अपना ही नहीं है किन्तु बड़े-बड़े मननशील पश्चिमी विद्वान् भी इस नूतन राजनीतिके दोष अनुमान प्रमाणद्वारा सिद्ध कर चुके हैं। प्रजातन्त्र राज्यशासनप्रणालीकी तरह स्वेच्छाचारी राजतन्त्र प्रणाली (Despotic Government) भी अतिभयसे युक्त है; क्योंकि इसमें भी जबतक धर्मभीरु, प्रजापालक, संयमी, न्यायवान् राजा उत्पन्न होते हैं तभीतक राज्यमें शान्ति रहती है, परन्तु राजवंशमेंसे इन गुणोंका नाश होते ही राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। यदि हिन्दुस्तानके इतिहासपाठक पठान साम्राज्य, मुगल साम्राज्य तथा अन्तिम हिन्दुसाम्राज्यकी प्रथम स्थिति, मध्यम स्थिति और अन्तिम स्थितिपर विचार करेंगे, तो इसकी सत्यताका अनुभव कर सकेंगे। और एक प्रकारकी प्रजा तथा राजाकी एकताकी भित्तिपर जो राजशासनप्रणाली (Limited monarchy) यूरोपमें प्रचलित है, वह अवश्य आर्य्यमतानुयायी है, किन्तु विचारविभिन्नताके कारण और मनुष्योंमें धर्म्मबुद्धिकी न्यूनताके कारण वे सब रीतियां भी परिवर्तनशील हैं। इङ्गलैंडके प्राचीन इतिहास, मध्य-समयका इतिहास तथा वर्तमान इतिहासके पाठ करनेसे विद्वान् मात्र ही समझ सकेंगे कि कितना परिवर्तन राज्यके राजनीतिविज्ञानमें हुआ है; यदिच राजनीतिकी उन्नतिमें इङ्गलैंड आज तक गिरा नहीं है और क्रमोन्नति करता ही आया है तथापि सूक्ष्म विचार द्वारा यह कहना ही पड़ेगा कि उसकी राजनीतिमें सदा परिवर्त्तन ही होता आया है। जहाँ परिवर्त्तनकी सम्भावना सदा रहती है, वहां गुणविचारद्वारा अवनतिसे उन्नति तथा उन्नतिसे अवनति होनेकी भी सम्भावना रहती है; इसी कारण इङ्गलैंडका राजनीतिकौशल आज दिन पृथिवी भरमें बहुत ही श्रेष्ठ होने पर भी वह भविष्यत् भयसे शून्य नहीं है; परन्तु प्राचीन भारतका अद्भुत सर्वव्यापक धर्म्म विज्ञान तथा सूक्ष्म राजनीतिकौशल इतना संस्कृत और उन्नत था कि उसमें कोई भी विघ्नकी सम्भावना नहीं थी। वर्त्तमान

भारतवासियोंके विषयमें हम नहीं कहते; किन्तु धार्मिक तथा आर्य्यरीति और आर्य्यधर्म्मपर चलनेवाले भारतवासियोंके आन्तरीयभावको अनुमान करके बुद्धिमान् मात्र ही कहेंगे कि, भारतका राजनीतिविज्ञान अपरिवर्तनशील तथा अनिवार्य था। भारतीय आर्य्यराजनीतिका अविमिश्र सम्बन्ध धर्म्मके साथ रहनेके कारण धार्मिकोंमें उसका कुछ भी परिवर्तन नहीं सकता। आर्य्योंकी राजनीतिमें उनके राजा भगवत् अंश समझे जाते हैं, आर्य्यगणकी राजनीतिमें राजशासन मानना तो परमधर्म्म ही है, किन्तु उनके निकट राजदर्शन, राजसेवन, राजाके निमित्त धन जन प्राण सपर्पण सर्वोत्कृष्ट धर्म्म समझा गया है। आर्य्यराजनीतिके अनुसार आर्य्यप्रजा अपने राजाको कुछ राजशासनके भयसे नहीं मानती, किन्तु अपना कर्त्तव्यकर्म और अपना परम धर्म्म समझकर ही वह सदा राज-आज्ञाधीन रहती है। अन्य पक्षमें राजा भी अपनेको अष्टलोकपालका अंश मानकर धर्म्मभीरुताके साथ अपने कर्त्तव्यका पूर्ण पालन करते थे और पुत्रकी तरह प्रजाका रक्षण करना, उनकी धनसम्पत्तिका अपनेको रक्षक समझना और सब प्रकारसे प्रजाको सुखी रखना ही अपने जीवनका एक-मात्र महाव्रत समझते थे। इस प्रकारसे राजशक्ति और प्रजाशक्तिका धर्मके द्वारा सामञ्जस्य होनेसे ही प्राचीन आर्यजातीय राजतन्त्र-प्रणाली इतनी प्रशंसनीय है, जिसमें रामराज्य आदर्श रूप है। यही प्राचीन आर्य राजनीतिकी सर्वश्रेष्ठताका लक्षण है, जिसके फलसे प्रजा राजा दोनों ही सुखशान्तिसे जीवन यापनकर सकते थे और जिसके विषयमें अनेक यूरोपीय विद्वानोंने मुक्तकंठ होकर प्रशंसा की है।

हिन्दुराजनीतिके सिद्धान्तोंकी भी पर्यालोचना करनेसे यही पाया जायगा कि—

ब्राह्मणा धर्मवक्तारः क्षत्रिया धर्मपालकाः।

अरण्यमें रहनेवाले, राज्यसुखको तुच्छ समझने वाले, तप स्वाध्या-

यको जीवनका मुख्य उद्देश्य मानने वाले निवृत्तिसेवी ब्राह्मणगत एकान्त में तपोवनमें मनुष्यजातिकी कल्याण चिन्तामें रत रह कर कानून बना दिया करते थे और क्षत्रिय राजगण उन कानूनोंको वेदवाक्य समझ कर अक्षरशः उनका पालन करते थे और साथ ही साथ ऐसे महर्षियोंके शिष्यपरम्पराके ब्राह्मणोंको सभासद (Councillor) बनाकर उनकी सम्मतिके अनुकूल राज्यशासन करते थे। धर्म ही ऐसे राजाओंका एकमात्र लक्ष्य हुआ करता था, जिसका आदर्श श्रीराम और श्रीयुधिष्ठिर जैसे नृपतियोंके जीवनमें पाया जाता है। ऐसे ऊपर लिखित लक्षणवाले धर्मवक्ताओंसे कोई गलती हो ही नहीं सकती और न ऐसे धर्मभीरु राजाओंसे निरङ्कुशताकी गलती हो सकती थी। प्राचीन कालमें प्रजासे ही चुनकर मन्त्रीका गठन हुआ करता था; परन्तु वह चुनाव विद्वान्, मूर्ख, पापी धर्मात्मा, सत् असत्, नीच ऊँच सब तरहकी प्रजाके समान वोटसे नहीं होता था। केवल धार्मिक, विज्ञ और विद्वान् व्यक्तियोंकी रायसे ही वह चुनाव होता था और धर्म ही उसकी प्रधान भित्ति थी।

हरबर्ट स्पेन्सरने (१) कहा है "कि प्रजाकी चरित्र-सम्बन्धीय उन्नतिको देखकर राज्यशासन प्रणालीके उत्कर्ष या अपकर्षका पता लगता है।" शास्त्रोंमें भी कहा है:—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा॥

राजाके धर्मिक होनेसे प्रजा धार्मिक होती है, पापी होनेसे प्रजा पापी होतो है और समभावापन्न होनेसे प्रजा समभावापन्न होती है। प्रजा राजाका ही अनुकरण करती है और राजाके तुल्य प्रवृतिवाली हो जाती है। जब पूर्व प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, आर्यजाति मिथ्यावाद, चोरी और अदालतमें जानातक नहीं जानती थी, तो इससे अधिक

1 Herbert Sencer's Autobiography.

उत्कृष्ट राजानुशासनका परिचय और क्या मिल सकता है ? आयलैंडके प्रसिद्ध पालिटिशियन एड्मण्ड बर्क साहबने कहा है कि "प्रजाकी संख्या और धन-सम्पत्तिको देखकर ही राजानुशासनकी परीक्षा होती है।" यदि इस बातकी ही परीक्षा ली जाय, तो भी आर्यजाति इसमें श्रेष्ठ निकलेगी; क्योंकि आर्यजातिकी संख्या और सम्पत्ति प्राचीन कालमें अतुलनीय थी। प्रोफेसर म्याक्स डङ्कार (१) और टेसियसने कहा है कि पृथ्वीकी सब जातियोंकी जितनी जनसंख्या होती है, एक ही आर्य-जातिकी उतनी जनसंख्या है और सम्पत्ति के विषयमें तो भारत स्वर्ण भूमिके नामसे चिरप्रसिद्ध ही है।" अतः यदि बर्क साहबकी राय मानी जाय, तो भी प्राचीन आर्यजातिमें शासनप्रणालीकी पूर्णता प्रमाणित होती है। वास्तवमें राजाका जो लक्षण है, सो प्राचीन आर्यजातिमें ही प्राप्त होता था। जिस जातिमें राजा अपनी प्रजाको पुत्रवत् देखते थे, जिस जातिमें राजा प्रजाकी धनसम्पत्तिको अपने विषय-विलासका उपकरण न समझकर अपनेको उनकी सम्पत्तिका रक्षक मात्र समझते थे, जिस जातिमें राजा प्रजारञ्जनके विना अपने जीवन और राजकार्यको व्यर्थ समझते थे, जिस जातिमें राजा केवल प्रजाको सन्तुष्ट करनेकेलिये अपनी निरपराधिनी पतिव्रता स्त्रीको घोर अरण्यमें त्याग कर सकते थे, उस जातिमें राजकीय शासन-प्रणाली किस प्रकारकी पूर्णतासे सुशोभित थी, सो विचारवान् पुरुष ही सोच सकते हैं। महाभारतमें जो राजधर्मके विषयमें वर्णन किया गया है, शुक्राचार्यने जो राजनीति बतायी है और मनुजीने जो राजशासनके लिये नीति बनायी है, पृथ्वी भरमें इनकी तुलना कहीं नहीं मिलती। प्रोफेसर विलसन (२) साहबने मनुजीके कानूनके विषयमें कहा है :—"इस प्रकारका कानून जिस जातिमें बनाया

1. History of Antiquity and Spiritual Research.

2. Disquisition concerning India.

जा सकता है वह जाति सामाजिक सभ्यता और अनुशासनकी पराकाष्ठा तक पहुंची हुई थी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता'। 'बाइबल इन इण्डिया' में लिखा है कि मनुस्मृति ही मिश्र, ग्रीस और रोमके कानूनोंकी भित्तिरूप है और पश्चिमी देशोंमें मनुस्मृतिका प्रभाव सभी लोग अनुभव करते हैं। डाक्टर राबर्टसन (१) साहब ने कहा है:— "मनुकी राजनीतिके देखनेसे प्रतीत होता है कि, पृथ्वीमें सर्वोत्तम सभ्य-जाति ही इस प्रकारके कानून बना सकती है। सूक्ष्मविचार, गम्भीर गवेषण न्यायपरता, स्वाभाविक धर्मवृत्ति और धर्मानुशासन इत्यादिकी विशेषता रहनेसे मनुजीकी नीति पाश्चात्य नीतिसे अनेक अंशोंमें उत्कृष्ट है।" सर चार्लस मेटकाफ (२) साहबने कहा है :—"आर्यराजनीतिका प्रभाव केवल समष्टि राज्यमें ही नहीं पड़ता था, अधिकन्तु उसीके प्रभावसे ग्राम ग्राममें प्रजातन्त्रप्रणालीकी ऐसी अच्छी व्यवस्था बन गयी थी कि, वे लोग परस्परमें ही सब राजनीतिका निर्णय कर लिया करते थे, जिससे उनको बड़ी अदालतों में कभी आना ही नहीं पड़ता था और इसप्रकारकी विराट् राजशक्तिके अधीन होनेपर भी वे व्यष्टि-रूपसे स्वतन्त्र और सुखी रहा करते थे।" ये ही सब प्राचीन आर्य-जातिमें राजनैतिक पूर्णताके अलभ्य लक्षण हैं।

—:oo:—

1. Mill's India.

2. Report of the Select Committee of the House of Commons.

सृष्टिका प्राचीनत्वविचार।

(१७)

बाइबिल और कुरानके माननेवाले यही विश्वास करते हैं कि, पृथिवीकी सृष्टि केवल तीन सहस्र वर्षोंके लगभग हुई है ; उनके विचारमें मानवजातिकी उत्पत्ति इस समयके अन्तर्गत ही है; परन्तु आर्य्यशास्त्र पृथिवीसृष्टिको और विलक्षणरूपसे ही वर्णन किया करते हैं और उसकी बहुत ही प्राचीनता सिद्ध किया करते हैं। आर्य्यशास्त्रोंमें लेख है कि, मनुष्योंके छः मासका एक अयन कहलाता है, दो अयनका एक वर्ष होता है, ऐसा मानवोंका एक वर्ष एक दैवअहोरात्रके तुल्य है। इसी प्रकार दैव अहोरात्रसे दैव सम्वत्सर भी समझना उचित है; ऐसे द्वादश सहस्र दैव वर्षोंसे एक महायुग होता है, एक सहस्र महायुगोंसे ब्रह्माका एक दिन होता है, इस प्रकार ब्रह्माका एक दिन और एक रात्रि मिलकर एक कल्प कहलाता है; अर्थात् ब्रह्माके दिन और रात्रिके मानवीय ८६४००००००० वर्ष होते हैं। कहीं कहीं ऐसा भी लेख है कि ७१ दैव-युगोंका एक इन्द्रपतन, १४ इन्द्रपतनोंका एक मन्वन्तर; अर्थात् ७१ महायुगोंका एक मनुपतन और १४ मन्वन्तरोंका एक ब्राह्म दिन हुआ करता है। ऐसे एक एक ब्राह्म अहोरात्र अर्थात् एक एक कल्पमें एक एक ब्राह्म प्रलय हो जाता है। ब्रह्माजी अपने अहोरात्रके दिवा भागमें सृष्टि रचकर रात्रि भागमें निद्रित हो जाते हैं, पुनः निद्रासे उठकर देखते हैं कि, इस अवस्थामें सृष्टिका प्रलय हो गया है, तो पुनः वे सृष्टि-क्रिया आरम्भ करदेते हैं। इस रीतिपर ब्रह्माके एक अहोरात्रको एक मानव महाकल्प भी कहते हैं। ३६० ब्राह्म अहोरात्रको एक ब्राह्म सम्वत्सर; १०० ब्राह्म वर्षोंका एक ब्राह्मपतन; अर्थात् ५० ब्राह्म वर्षोंका एक परार्द्ध, और दो परार्द्धकी एक ब्राह्मशताब्दि हुआ करती है। उसकी

संख्या मानव वर्षोंके अनुसार ३११०४०,०००००००० वर्ष होते हैं। यही सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्माकी आयु है। इस आयुके अनन्तर ब्रह्माका लय हो जाता है।

ब्रह्माजीके एक हजार दिनमें विष्णु भगवान्की एक घटिका होती है। इसी हिसाबसे भगवान् विष्णु अपने वर्षोंके सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। उनकी आयु मानवीय वर्षके अनुसार ९३३१२०००००००००-०००० वर्ष होती है। एक विष्णुकी आयुमें अनेक ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाते हैं। बारह लाख विष्णु भगवान्की घटिका रुद्र भगवान्की आधी घटिकाके बराबर होती है। इस प्रकारके रुद्र भगवान् अपने वर्षके सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। इस हिसाबसे रुद्र भगवान्की आयु मानवीय वर्षके अनुसार २२३९४८८००००००००००-००००००० वर्ष होते हैं। एक रुद्र भगवान्की आयुमें अनेक विष्णु ब्रह्म-भावमें मिल जाते हैं। वास्तवमें रुद्र भगवान्की आयु ही एक ब्रह्माण्डकी आयु मानी जा सकती है। यदि, तीनों भगवान् सगुण ब्रह्म हैं, यदि च इन तीनोंकी आयुमें प्रभेद है परन्तु अपनी अपनी शक्तिमें प्रभेद नहीं है। ये ही तीनों प्रत्येक ब्रह्माण्डके नायक हैं और सगुण ब्रह्म कहलाते हैं। पृथिवीकी अन्य कोई जाति चाहे कुछ ही माने परन्तु आर्यजाति एक रुद्रकी आयुके समान एक ब्रह्माण्डकी आयु मानतो है। पूर्वलिखित ब्रह्माजीकी आयुका प्रथम परार्द्ध हो चुका है, अब द्वितीय परार्द्धका प्रथम दिवस अर्थात् प्रथम कल्प चल रहा है, जिस कल्पका नाम वाराह-कल्प है। कहीं कहीं इस कल्पकी श्वेतवाराहकल्प संज्ञाकी गयी है; क्योंकि पूर्वमें कृष्णवाराहकल्प और रक्तवाराहकल्प आदि नामोंसे बहुतसे वाराहकल्प बीत चुके हैं। श्वेतवाराह कल्पका परिमाण ४३२००००००० मानव वर्ष हैं; जिनमेंसे १९७२९४८९९८ सें कुछ अधिक व्यतीत हो चुके हैं। मानवयुगप्रमाणके सम्बन्धमें ऐसा लेख है कि, १७२८०००

वर्षोंका सत्ययुग, १२९६००० वर्षोंका त्रेंतायुग, ८६४००० वर्षोका द्वापर-युग और ४३२००० वर्षोका कलियुग हुआ करता है; जिनमेंसे सत्य, त्रेता, द्वापरयुग बीतकर कलियुगके भी पांच सहस्र वर्षोसे अधिक बीत चुके हैं।

आर्य्यशास्त्रोंका यह सृष्टिआयुप्रमाण सुननेसे बाइबिल और कुरान-कथित सृष्टिआयुप्रमाण बालकोंकी उक्ति प्रतीत होती है। पूर्व्ववत् पश्चिमी विद्वान्‌गण आर्य्य शास्त्रोक्त ऐसे प्रमाणोंको देखकर चौंका करते थे और इन संख्याओंको कविकी कल्पना कह डालते थे, परन्तु जबसे यूरोपमें पदार्थविद्या (सायन्स) की पूर्ण उन्नति हुई है, तबसे उनका यह सन्देह दूर होने लगा है। भूतत्ववित् वैज्ञानिकोंने पृथिवीकी प्रस्तर-परीक्षा द्वारा यह सिद्धान्त कर लिया है कि, प्राकृतिक नियमकेअनुसार उनमें ऐसा परिवर्तन लक्षों वर्षोंमें हो सकता है; इसकारण अगत्या वे बाइबिल और कुरानके मतको भ्रमपूर्ण समझने लगे हैं। आजकलके नाना शास्त्रवेत्ता वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया है कि, सूर्य्यगर्भसे पृथि-वीकी उत्पत्ति और पृथिवीगर्भसे चन्द्रकी उत्पत्ति हुई है; जिसमेंसे पृथवी-गर्भसे चन्द्रकी उत्पत्तिका प्रमाण वे ५००००००० वर्ष अनुमान करते हैं और इसी रीतिपर यदि सूर्य्यसे पृथिवीसृष्टिका अनुमान किया जाय, तो संख्या बहुत ही बढ़ जायगी। चन्द्र-उत्पत्तिकी संख्यासे पृथिवीकी उत्पत्तिकी संख्याका प्रमाण बहुत ही बढ़ जानेका कारण यह है कि पदार्थवित् (Scientist) पंडितगण चंद्रको अभीतक असंपूर्ण ग्रह ही मानते हैं, परन्तु पृथिवी सम्पूर्ण ग्रह है। पश्चिमी विद्वानोंके इन अनु-संधानोंको देख कर अब कोई भी आर्य्यशास्त्रोक्त सृष्टिप्रमाणको मिथ्या नहीं मान सकता; इस कारण उनके ही वाक्योंद्वारा आर्य्यज्ञान और आर्यजातिकी प्राचीनता सिद्ध हुई है। प्रथम तो सिवाय आर्य्यजातिके और किसीको भी पृथिवीके प्राचीनत्वका बोध नहीं है, द्वितीयतः आर्य्य-

जातिके सिवाय अन्यान्य जातियोंमेंसे किसीको भी अपने पूर्वपुरुषोंका यथावत् ज्ञान नहीं है; तो उन पश्चिमी विद्वानोंके कहनेपर कैसे कोई विश्वास कर सकता है कि, भारतीय आर्य्यजाति तथा यूरोपियन जातियाँ सब तीन सहस्र वर्ष पूर्व मध्यएशियामें असभ्य होकर एकत्रित वास किया करती थीं। जो जाति आज दिन केवल डेढ़ वा दो सहस्र वर्षोंका पता लगा सकती है, बुद्धिमान् उसके कहनेका विश्वास करेंगे, अथवा वह आर्य्यजाति जो लक्षों वर्षोंका दृढ़ प्रमाण देती है, उसके सिद्धान्तोंपर विश्वास करेंगे ? यूरोपीय ऐतिहासिकगण मध्यएशियामें सब मनुष्य-जातिके वासका जो प्रमाण दिया करते हैं, वह केवल कविकल्पना मात्र है, क्योंकि आज दिन तक कोई भी पश्चिमी ऐतिहासिक पण्डित इस विषयमें दृढ़ प्रमाण नहीं दे सका है। यूरोपीयन जातिका पूर्व दिशासे यूरोपमें जाकर वास करनेका प्रमाण मिलता है, परन्तु उस प्रमाणसे भारतीय आर्य्योंके मध्य एशियावासका कोई भी सम्बन्ध नहीं सिद्ध होता है; किन्तु उससे यही सिद्ध होता है कि, यूरोपीयन जाति भारतवर्षके निकले हुए धर्मत्यागी आर्यसंतानोंके वंशोद्भव हैं। पुराणकथित उदभ्र और ऊनकी कथासे एडम् और इभकी कथाका पूर्ण सम्बन्ध पाया जाता है। आर्यजातिके आदि निवास स्थानके विषयमें 'प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत' नामक ग्रन्थमें विचार किया जायगा। यहाँपर इतना विषय तो प्रमाणित ही हुआ कि, सृष्टिके कालनिर्णयके विषयमें हिन्दुजातिके विचार पृथिवीके और सब धर्मावलम्बियोंके विचारसे विचित्र और मान्य हैं।



वेदोंकी पूर्णता।

(१८)

अनादि और अपौरुषेय वेद सनातन धर्मके मूलरूप हैं। वेद शब्दका भावार्थ ज्ञान है। विद् धातुसे वेद शब्दकी उत्पत्ति होनेके कारण वेद शब्द ज्ञानवाचक है। वेद मनुष्यद्वारा प्रणीत नहीं हुए, इस कारण वे अपौरुषेय कहलाते हैं।

वेदोंमें ज्ञान और विज्ञान दोनों ही विस्तृतरूप से वर्णित हैं। अघटनघटनापटीयसी अन्तशक्तिशालिनी महामायाकी लीलाभूमि, अनन्त आकाश और ग्रह नक्षत्रादि लोकोंसे सुशोभित संसार जिसप्रकार अनन्त है, उसी प्रकार ज्ञानप्रकाशक वेदोंका स्वरूप भी अनन्त है। केवल एक ज्ञानदृष्टिसे ही हम इस संसारको अनन्त देख रहे हैं। प्रथम तो ज्ञानविस्तारका यह स्थूल जगत् ही अनन्त है; पुनः विज्ञानसे सम्बन्धयुक्त अध्यात्मराज्यका इस बहिर्जगत्से और भी विस्तृत होना सम्भव है। अपिच वेदोंमें जब ज्ञान और विज्ञान दोनोंका ही वर्णन है, तब वह वेदरूपी शब्दब्रह्म कितने अनन्तरूपधारी हो सकते हैं, सो विचारशील पुरुष मात्र ही समझ सकते हैं। वेद अनन्त होनेपर भी इस कल्पके वेदोंकी संख्या पायो जाती है कि ऋग्वेदकी २१ शाखायें, यजुर्वेदकी १०९, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ५० शाखायें हैं। परन्तु महान् शोकका विषय है कि, भारतमें नाना विप्लव और भारतवासियोंकी वर्तमान अज्ञानताके कारण वेदोंकी ११८० शाखायें रहनेपर भी आज दिन केवल पांच सात शाखायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। वर्तमान सृष्टिके इस कल्पकी जितनी शाखाओंमें अपौरुषेय वेदका विस्तार हुआ था उन प्रत्येक शाखाओंके स्वतन्त्र स्वतन्त्र मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग, उपनिषद्भाग,

वेदाङ्गमें सूत्र और प्रातिशाख्यके भेदोंपर विचार करनेसे परिज्ञात होगा कि, इस कल्पमें भी वेदोंका कितना महान् विस्तार था।

वेद अपौरुषेय हैं, वेद ईश्वरकृत हैं, इसके विषयमें वैज्ञानिक आलोचनाकी आवश्यकता नहीं; जिस भाग्यवान् पुरुषके निर्मल अन्तःकरणमें वेदकी ज्ञानज्योति प्रतिफलित होती है, वे स्वयं ही इस बातका विचार कर सकते हैं कि, इस प्रकार भाषा, भाव या पूर्णतायुक्त ग्रन्थ मनुष्यके द्वारा निर्मित हो सकता है या नहीं। वेदकी भाषाकीओर दृष्टि डालिये, मनुष्योंकी विद्वत्ता जिस भाषाको प्रकाश कर सकती है, वैदिक संस्कृत उससे कुछ विलक्षण ही है। वैदिकमन्त्रोंके विषयमें क्या कहा जाय, सर्वशक्तिमान् अनन्त भगवान्के मुखनिःसृत एक एक मन्त्रमें अनन्त शक्ति भरी हुई है, जिसके ठीक ठीक उच्चारण और सिद्धिसे सकल कामनाकी पूर्ति हो सकती है तथा अशुद्ध उच्चारण या प्रयोगसे बहुधा हानि भी हो सकती है। ये सब वेदके अपौरुषेयत्वके ही परिचायक हैं। इसके सिवाय प्रधान लक्षण यह है कि, पूर्ण भगवान्के वाक्यरूपी वेद सब तरहसे पूर्ण हैं। मनुष्यबुद्धिसे बनाया हुआ कोई भी ग्रन्थ हो, उस बुद्धिके परिच्छिन्न और अपूर्ण होनेसे ग्रन्थकी सर्वाङ्गीण पूर्णता कदापि नहीं हो सकती, परन्तु वेदमें यह बात नहीं है। वेदमें जीवके इस लोक और परलोकको उन्नति तथा मोक्षसाधन करानेके विषयमें पूर्णता, वेदमें जीवकी तीन प्रकारसे शुद्धि करके मुक्तिपद प्राप्त करानेकेलिये कर्म, उपासना और ज्ञानकी पूर्णता, वेदमें साधक तथा भक्तको तीन गुणवाली प्रकृतिका हरएक स्तर दिखाकर मुक्ति देनेकेलिये गुणोंकी पूर्णता, संसार भावमय है, भावमय भगवान्की सत्ता भी संसारमें व्याप्त है, इसलिये भावोंको अच्छी तरह जाननेसे भावग्राही भगवान्की भी प्राप्ति होती है, अतः वेदमें तीन भावोंकी पूर्णता, इस तरह जितना ही विचार किया जायगा, वेदकी सर्वाङ्गीण पूर्णता आँखोंके सामने होकर अपौरुषेयत्वकी सिद्धि होगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

मनुष्योंकी बुद्धि अपने अपने अधिकारके अनुसार इस लोककी विषय सम्बन्धीय उन्नति, परलोककी स्वर्गलोकमें सुखभोगरूप उन्नति और नित्यानन्दमय मोक्ष पदवीको चाहती है। इन तीनों उन्नतियोंमें ही मानवीय उन्नतिकी पूर्णता है। अपौरुषेय वेदने अनुपम युक्तियोंकेद्वारा तीनों प्रकारकी उन्नतिकी विधि बतायी है। आजकल सायन्सकी उन्नतिको देखकर मनुष्य मुग्ध हो रहे हैं। अपनी प्राचीन वेद विद्याकी गम्भीरताको भूलकर उसे "कृषकोंका गान" कहनेमें भी संकुचित नहीं होते हैं; परन्तु दूरदर्शिताके साथ विचार करनेपर वेदकी गम्भीर महिमा उन अर्वाचीन पुरुषोंको स्पष्टतया मालूम होगी। ऋग्वेदके चतुर्थ और दशम मण्डलमें जो कृषिकी उन्नतिके विषयमें स्तोत्रादि देखनेमें आते हैं, वे सब कृषिकार्य्य, कृषियन्त्र और गो महिषादि गृह पशुओंकी उन्नतिके लिये भगवान्‌से प्रार्थनायें हैं। सायन्सकी उन्नति आँखोंको मुग्ध कर सकती है, बुद्धिको प्रमादग्रस्त कर सकती है; परन्तु दूरदर्शी, परिणामदर्शी, करुणामय महर्षियोंको यह वात मालूम थी कि, सायन्सकी उन्नतिसे संसारके एक अंशके मनुष्य सुखी और धनी हो जाते हैं और दूसरे अंशके मनुष्य अत्यन्त गरीब और भिखारी हो जाते हैं। आज कल जिन देशोंमें सायन्सकी उन्नति हो रही है, वहाँकी दशाको देख सकते हैं और उसका प्रभाव भारतपर होनेसे भारतकी प्राचीन और नवीन दशाको मिलाकर विचार करनेपर भी मालूम होगा कि पहले भारतकी आर्थिक दशा कैसी थी और अब कैसी है? ये सब विषय ऋषियोंकी तीक्ष्ण बुद्धिके अगोचर नहीं थे, इसलिये समदर्शी महर्षि लोग स्थूल सम्पत्ति और सुखकेलिये कृषि और गोरक्षापर इतना जोर देते थे, इससे समस्त देश समान रूपसे सुखी और शान्तिमय था। यह भगवान्‌का अभीष्ट था; इसलिये वेदमें कृषिकी उन्नतिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना है। द्वितीयतः सायन्सकी भी कमी नहीं थी। ऋग्वेदमें अर्णव यान, वृहन्नालिकादि युद्धास्त्र, बहुत प्रकारके आग्नेयास्त्र, युद्धविद्या आदिका भी

प्रमाण मिलता है। आज प्राचीन मिश्र और बाविलोनके प्रस्तरस्तभको देखकर लोग आश्चर्य्ययुक्त हो रहे हैं; परन्तु आर्य्यगण शिल्प कार्य्यमें किस प्रकार निपुण थे, ऋग्वेदके द्वितीय और पञ्चम मण्डलमें उसका प्रमाण मिलता है। वहाँ सहस्र स्तम्भयुक्त विशाल अट्टालिकाका वर्णन है। इसके सिवाय बहुत प्रकारके वपन कार्य्य, वाणिज्य, शिल्पकला, धातु द्रव्यनिर्माण आदिकेद्वारा भारत वास्तवमें स्वर्णप्रसू भारत ही था, जिसके प्रमाण ऋग्वेदके प्रथम और चतुर्थ मण्डलमें बहुधा मिलते हैं। इसलिये ऐहलौकिक सुख और ऐश्वर्यकेलिये आज दिन अपने थोड़ेसे वेदमें सकल प्रकारका साधन मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

स्मृतिमें लिखा है किः—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

जहाँपर लौकिक प्रत्यक्ष नहीं पहुँच सकता है और अनुमान भी परास्त होकर जहाँसे लौट आता है, इस तरहकी अलौकिक पदवीपर साधकको पहुंचा करके दिव्य सुख और नित्यानन्दका अधिकारी कर देना ही वेदका वेदत्व है। वेदमें ज्योतिष्टोम, दर्शपौर्णमास आदि बहुविध यज्ञोंकी विधि बतायी गयी है, जिनके अनुष्ठानसे सकाम साधक विविध स्वर्गीय सुखोंको भोग सकता है। गीतामें लिखा है कि, वैदिक अनुष्ठाता यज्ञोंकेद्वारा भगवान्‌की पूजा करके यज्ञशेष सोमरस पान कर निष्पाप हो स्वर्गलोककी प्रार्थना करते हैं, वे लोग पुण्यविपाकरूप इन्द्रलोकको प्राप्त होकर उसमें देवताओंके योग्य उत्तम भोगोंको भोगते हैं। मुण्डकोपनिषद्‌में लिखा है कि, ज्योतिष्मती आहुति यजमानको "आओ आओ" करके पुकारती हुई सूर्य्यरश्मिद्वारा पुण्यमय ब्रह्मलोकको ले जाती है और श्रुतिमें लिखा है कि, हमलोग सोमपान करके अमर हो गये हैं इत्यादि बहुविध देव-लोकका अतुलनीय सुखभोग वेदकी ही कृपासे साध्य है। मन, वाणीके

अगोचर ब्रह्मका शास्त्रोंमें वर्णन है कि, जहाँ चन्द्र नक्षत्र विद्युत् अथवा अग्निकी पहुँच नहीं, जो सबसे अतीत है परन्तु जिनके तेजसे समस्त संसार प्रकाशित है; ऐसे आनन्दमय परम पुरुषके साक्षात्कार होनेसे हृदयनिहित अविद्याग्रन्थि खुल जाती है। समस्त सन्देहजाल छिन्न हो जाते हैं और सञ्चित क्रियमाण समस्त कर्मोंका क्षय हो जाता है। और भी कहा है कि, जिसको वाणी प्रकट करनेमें असमर्थ होकर लौट आती है, जहाँपर मनकी भी गति नहीं है, ऐसे आनन्दमय परम पदके जाननेसे संसारभय नष्ट हो जाता है। वहाँ सायन्सकी तो वात ही क्या? प्लेटो और क्यान्टकी गवेषणा भी परास्त है और साक्रेटिस भी इस ज्ञान समुद्रके तटपर उपलखण्ड मात्र संग्रह कर रहे हैं। ऐसे ब्रह्म पदको प्राप्त कराकर मुक्तिलाभ करानेकी शक्ति यदि किसीमें है, तो सब रीतिसे पूर्ण भगवान्के निःश्वासरूपी वेदमें ही है। यही वेदकी अपौरुषेयताका अकाट्य प्रमाण है, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण प्रसिद्ध पण्डित शॉपेनहरने कहा था कि "वैदिक उपनिषद्ने मुझे जीवित कालमें शान्ति दी थी और मृत्यु-कालमें भी वही उपनिषद् मुझे शान्ति प्रदान करेगा।" वेदकी महिमाके विषयमें कितने ही पश्चिमी पण्डितोंने मुक्तकण्ठ होकर स्तुतिगान किया है। प्रोफेसर मेक्समूलरने (१) कहा है, "मनुष्य जातिकी शिक्षाकेलिये वेद अपूर्व ग्रन्थ है, जिसकी तुलना संसारमें और किसी जातिके ग्रन्थके साथ नहीं हो सकती। पृथिवीके इतिहासके विचारमें भी वेदका स्थान सर्वोन्नत है।" यजुर्वेदके विषयमें वॉल्टेयर साहबने (२) कहा है कि "पश्चिम देशीयोंके प्रति आर्य्यजातिका यह एक सर्वोत्तम मूल्यवान् दान है, जिसके लिये पश्चिम देशीयोंको आर्य्यजातिके पास चिरऋणी रहना

1. India: what can it teach us?

2. Wilson's Fssays.

चाहिये।" लियन डेवो साहबने (१) कहा है कि "ग्रीस और रोमका कोई भी कीर्त्तिस्तम्भ ऋग्वेदसे अधिक मूल्यवान् नहीं है।" हन्टर साहब तथा मेक्समूलर साहबने कहा है कि "ऋग्वेदकी जन्मतिथिका पता ही नहीं लग सकता है। पृथिवीकी सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद ही है।" प्रोफेसर हीरेन (२) साहबने भी वैसा ही कहा है। इसी प्रकारसे वेदाङ्ग-रूपी शिक्षाके विषयमें विल्सन साहबने, व्याकरणके विषयमें हन्टर, एलफिनष्टोन, विलियम आदि साहबोंने भूरि भूरि प्रशंसा की है। येही वेद तथा वेदाङ्गोंकी पूर्णता तथा अपूर्वताके दृष्टान्त हैं।

—:००:—

पुराणोंका महत्त्व।

(१९)

पुराण वेदके व्याख्याग्रन्थ हैं, अतः सर्वथा वेदानुकूल हैं। वेदमें जो समाधिगम्य कठिन कठिन विषय प्रकाश किये गये हैं, उन्हींको कहीं भिन्न भिन्न भावोंसे, कहीं भिन्न भिन्न भाषामें, कहीं भिन्न भिन्न अलङ्कार और गाथासे, विस्तारके साथ पुराणोंमें एक भी शब्द या विषय वेदविरुद्ध नहीं है। जहाँ वेदविरुद्ध प्रतीत हो, वहाँ बुद्धिका दोष और समझनेका दोष है, पुराणका नहीं। श्रीभगवान् अज, नित्य, शाश्वत और पुराण-पुरुष हैं, इसलिये उनके निःश्वासरूपी वेद और वेदव्याख्यारूप पुराण भी

1. **Paper on the Vedas.**

2 **Historical Researches.**

नित्य और पुरातन हैं। पुरातन होनेसे ही इनका नाम पुराण है। वाजसनेयी ब्राह्मणोपनिषद्में लिखा है कि, चार वेद, इतिहास, पुराण इत्यादि महान् पुरुष परमेश्वरके निःश्वास हैं, निःश्वास शब्दके दो अर्थ किये गये हैं। प्रथमतः निःश्वास जिसप्रकार आपसे आप प्राकृतिकरूपसे निकलता है, उसी प्रकार वेद और पुराण आदि भी परमात्मासे अनायास ही निकले हैं। द्वितीयतः निःश्वास शब्दकेद्वारा वेद और पुराणकी नित्यता और पूर्णता सिद्ध की गयी है। जीवशरीरमें दो प्रकारके यन्त्र होते हैं। एकका नाम स्वेच्छासेवक और दूसरेका नाम परेच्छासेवक है। हाथ, पाँव, आदि यन्त्र परेच्छासेवक हैं, क्योंकि जीवकी इच्छानुसार ही इनका कार्य्य होता है। हाथ स्वयं नहीं हिलता है, पाँव स्वयं नहीं चलता है, जीवके हिलाने तथा चलानेसे ही हिलता चलता है, इसलिये परेच्छासेवक हैं; परन्तु श्वासयन्त्र और पाकयन्त्रआदि कई यन्त्र ऐसे हैं कि, जीवकी इच्छाके विना भी उनका कार्य्य चलता है। श्वासको चलनेकेलिये नहीं कहना पड़ता। समस्त संसार निद्राकी गोदमें सो जाय, सबका कार्य्य बन्द हो जाय, तो भी श्वासका कार्य्य अविराम चलता है और जीवके जन्मसे लेकर मृत्यु पर्य्यन्त क्षणभर भी विश्राम न लेकर चलता ही रहता है। इसलिये स्वेच्छासेवक यन्त्रोंके साथ जीवका जीवत्व सम्बन्ध अधिक है। हाथ और पाँवके काट डालनेसे मनुष्य जीता रह सकता है; परन्तु श्वास-यन्त्रमें थोड़ा ही बिगाड़ होनेसे मनुष्य उसी समय मर जाता है। अर्थात् जीवका यावद्द्रव्यभावित्वसम्बन्ध श्वासके साथ है; पुराण और वेद जब भगवान्के निःश्वास हैं, तो इससे यही सिद्धान्त हुआ कि, पुराण और वेदकेसाथ भगवान्का यावद्द्रव्यभावित्व सम्बन्ध अर्थात् नित्य सम्बन्ध विद्यमान है। इसलिये जब भगवान्की उत्पत्ति तथा नाश नहीं, भगवान् नित्य हैं, तो उनके निःश्वासरूपी वेद तथा पुराण भी नित्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। यही निःश्वास कहनेका तात्पर्य्य है। पुराणको भगवान्के निःश्वास कहनेसे यह भी तत्त्वनिर्णय

होता है कि, जिस प्रकार श्वास-यन्त्रके साथ जीवका सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसी प्रकार भगवान्का भी स्वाभाविक सम्बन्ध पुराणसे है, इसलिये भगवान्के स्वाभाविक गुण पुराणमें भी हैं। भगवान् नित्य हैं। इसलिये पुराण भी नित्य हैं। जीवोंके कार्य्यानुसार वे वेदके सदृश युग-युगमें प्रकट होते हैं। जिस प्रकार भारतवासियोंके दुर्भाग्य, संशयात्मिकावुद्धि और पापके कारण वेदके हजारों ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं; उसी प्रकार विश्वास, आस्तिकता आदि सद्गुणोंके अभाव होनेसे पुराणके भी बहुत ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। भगवान्का दूसरा गुण यह है कि, भगवान् पूर्ण हैं इसलिये पुराण भी पूर्ण हैं। पुराणकी यह पूर्णता, त्रिविध भाषामें, त्रिविध भावमें, त्रिगुणके अनुसार त्रिविध अधिकार वर्णनमें, प्रकृति तथा प्रवृत्तिके अनुसार सकल प्रकारके मनुष्योंके कल्याण करनेमें, कर्म, उपासना तथा ज्ञानका तत्त्व निर्णय करते हुए ज्ञानकी गम्भीरता, भक्तिकी माधुरी और कर्मयोगके आत्मत्यागमें, परम आस्तिकतामें, धर्मसंकटोंकी मीमांसामें, प्राचीन सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक आचार और विधि व्यवस्था वर्णनमें और आदर्श चरित्रोंका विचित्र चरित्र दिखाकर संसारकी उन्नति करनेमें है।

पुराणके अतिरिक्त जो इतिहासग्रन्थ हैं, वे भी पुराणके ही अन्तर्गत हैं, यथा—महाभारत और रामायण। पुराण और इतिहासका प्रधानतः पार्थक्य यह है कि, इतिहासमें प्राचीन आख्यायिका अधिक और सृष्टि आदिका तत्त्व कम बताया जाता है; किन्तु पुराणमें सृष्टि-आदिका वृत्तान्त अधिक और प्राचीन इतिवृत्त कम बताये जाते हैं; परन्तु इतिहासमें भी पुराणका अंश और पुराणमें भी इतिहासका अंश बहुत रहता है। ये इतिहास ग्रन्थ भी पुराण ग्रन्थ ही हैं क्योंकि पुराणके निम्नलिखित विभाग हैं, यथा—उपपुराण, पुराण, महापुराण, इतिहास और पुराणसंहिता। किन्तु इन सब ग्रन्थोंको आधुनिक इतिहासग्रन्थ नहीं समझना

चाहिये, जैसा कि अर्वाचीन लोग समझते हैं। वस्तुतः ये सब ग्रन्थ वेदके भाष्यग्रन्थ हैं। यदि ये सब आधुनिक ढंगके इतिहासग्रन्थ होते तो पौराणिक गाथाओंमें परस्पर विरोध नहीं होता, जैसा कि विष्णु भागवतके शुकचरित्रके साथ देवीभागवतका शुकचरित्र बहुत भिन्न है। आजकल जो पुराणपर बहुत लोगोंका सन्देह हुआ करता है, उसमें और और कारणोंके सिवाय यह भी एक प्रधान कारण है कि, लोग पुराणकी भाषा तथा भावादिको समझकर पढ़ना नहीं जानते। पुराणमें तीन प्रकारकी भाषायें वर्णित हैं, यथा—पुराणसंहितामें :—

समाधिभाषा प्रथमा लौकिकीति तथापरा।
तृतीया परकीयेति शास्त्रभाषा त्रिधा स्मृता॥

पुराणोंमें समाधि भाषा, लौकिक भाषा और परकीय भाषा, ये तीन प्रकारकी भाषायें हुआ करती हैं। समाधि भाषा उसका नाम है, जिसकेद्वारा ऋषियोंने वेदके प्रति गम्भीर समाधिगम्यतत्त्वोंको जान कर ठीक ऐसी ही कठिन भाषामें पुराणोंमें लिख दिया है, जैसा भगवद् गीतादिशास्त्र। लौकिक भाषा उसका नाम है, जिसके द्वारा ऋषियोंने समाधिगम्य कठिन तत्त्वोंको लौकिक रीतिके अनुसार लौकिक भावकी सहायतासे सकलप्रकारके मनुष्योंको समझानेकेलिये बहुत प्रकारके रूपक और अलङ्कारके साथ अति सरस भाषाद्वारा प्रकट किया है। दृष्टान्त रूपसे समझ सकते हैं कि, विष्णुपुराणमें जो प्रकृति पुरुषकेद्वारा महत्तत्त्व, अहंतत्त्व, आदि क्रमसे सृष्टिका वर्णन किया गया है, वह समाधि-भाषा है और वही सृष्टितत्त्व देवी भागवतमें मधुर रासलीला रूपसे जैसा वर्णन किया गया है, वह लौकिक भाषा है। इसी प्रकारसे लिङ्ग पुराणमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवसम्वादसे लिङ्गमाहात्म्य, मत्स्यपुराणमें ब्रह्माजीका कन्याहरण आदि सब लौकिकभाषाके दृष्टान्त हैं। समाधिभाषा स्वर्गकी मन्दाकिनी है, परन्तु उस मन्दाकिनीका आनन्दलाभ देवता ही

कर सकते हैं। मनुष्योंके भाग्यमें भगीरथकी कृपाके विना तरल तरङ्गिणी मन्दाकिनीका आनन्द लाभ नहीं हो सकता। इसलिये ही ऋषियोंने भगीरथरूपी लौकिक भाषाकेद्वारा दुर्गम समाधिगम्य मन्दाकिनीरूप समाधिभाषाके भावोंको भागीरथीकी धाराके तुल्य मर्त्यलोकमें प्रवाहित करके मन्दमति मनुष्योंका अशेष कल्याणसाधन किया है। तृतीय परकीया भाषा उसका नाम है, जिसमें इतिहासोंकेद्वारा धर्मतत्त्व समझाया गया है। जैसे सत्यधर्मकी प्रतिष्ठामें हरिश्चन्द्रकी गाथा, भक्तिमहिमामें ध्रुव-प्रह्लादकी गाथा, सतीधर्ममहिमाके वर्णनमें सावित्रीकी गाथा इत्यादि। केवल "सत्यं वद धर्मं चर" सत्य वोलो, धर्मका आचरण करो, इस प्रकारका रूखा उपदेश करनेसे थोड़े ही लोग सत्यवादी और धार्मिक होते हैं; परन्तु यदि इसी शिक्षाको दृष्टान्त द्वारा समझा दिया जाय, तो लोग मान लेते हैं और धार्मिक होते हैं, इसलिये ही पुराणोंमें परकीय भाषाका वर्णन है। वेदोंमें भी यही तीनों प्रकारकी वर्णनशैली है। केनोपनिषद्में जो अग्नि वायु आदि देवताओंका अहङ्कारनाश करके ब्रह्मकी सर्वशक्तिमत्ता बतायी गयी है और छान्दोग्योपनिषद्में जो इन्द्रियोंमें परस्पर प्रधानताकेलिये विवाद बताकर अन्तमें प्राणकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है, वे सब वेदके लौकिक वर्णन हैं। उसी प्रकार वेदोंमें दृष्टान्तरूपसे अनेक गाथायें भी हैं। ये तीनों प्रकारके वर्णन स्वभावसिद्ध हैं, क्योंकि संसारमें सब अधिकारी एकसे नहीं होते और सब समय एक ही प्रकारका भाव अच्छा नहीं लगता, इसी कारण पुराणोंमें इस प्रकारका भाषावैचित्र्य है। समाधि भाषा, लौकिक भाषा और परकीय भाषा इन तीनोंका यथार्थ रहस्य समझे विना पुराण शास्त्रोंका अध्ययन अध्यापन और उपदेश करना पूर्ण फलजनक नहीं होता और न पूर्ण आनन्दको ही देनेवाला होता है। ऋषियोंने सकल प्रकारके अधिकारियोंके कल्याणकेलिये कृपा-

कर पुराण शास्त्रमें सर्वजीवहितकारिणी तीन प्रकारकी भाषाओंका प्रयोग किया है।

पुराणोंमें प्राचीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक आचार पूर्णरूपसे वर्णित किये गये हैं। पुराण वेदोंके अनुकूल और स्मृति और दर्शनोंके अनुकूल तथा उन्हींके व्याख्यारूप हैं, इसलिये पुराणोंमें वर्णित सामाजिक, राजनैतिक और धर्मसम्बन्धीय आचार और रीति नीति सभी श्रुति स्मृति दर्शनोंके अनुकूल हैं। वेदोंका गूढ़रहस्य, दर्शनोंका सृष्टि-स्थिति प्रलयतत्त्व और स्मृतियोंका अनुशासन सभी पुराणोंमें सरल और विस्तृत रूपसे वर्णित है। निर्गुण ब्रह्मोपासना, सगुण मूर्तिपूजा, व्रत, दान, तीर्थदर्शन आदिका माहात्म्य पुराणोंमें मधुर भावसे वर्णित हैं। भूमिदान, जलदान, अन्नदान इत्यादि विषयोंमें मनु आदि स्मृतियोंका आदेश भी पुराणोंमें उत्तम रीतिसे बताया गया है। पुराणोंके चरित्र-समूह देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि, धर्म और सदनुष्ठानकीओर मनुष्योंका चित्त सदा ही लगा हुआ था, जो धर्म करते थे, उनकी जय होती थी और जो अधर्म करते थे, उनका पतन होता था। अधार्मिक अत्याचारी वेण राजा राज्यभ्रष्ट और नरकगामी हुए थे। उनके पुत्र पृथु धर्मके साथ राज्य पालन करनेके कारण समस्त पृथिवीके अधीश्वर हुए थे और पिताका उद्धार करके स्वर्ग धामको सिधारे थे। हिरण्यकशिपु रावण, दुर्योधन आदिके अधःपतनके और प्रह्लाद, रामचन्द्र और युधिष्ठिर आदिके जयश्री लाभकेद्वारा धर्माधर्म और फलाफल स्पष्ट रूपसे प्रकट किया गया है। व्रतकथा और दानधर्म वर्णन आदिकेद्वारा मनुष्योंका चित्त दूसरोंका कल्याण करनेकेलिये उत्साहित किया गया है। तीर्थोंका माहात्म्य कीर्तन, देवताओंका दर्शन और पुण्य कार्य्योंके अनुष्ठानकेद्वारा मनुष्योंके हृदयमें धर्मभाव जगाया गया है। स्मृतियोंमें जो धर्म संक्षेपसे कहा गया है, उसीको ही पुराणोंमें विस्तृतरूपसे वर्णन किया

है । ब्राह्मण आदि चार वर्णोंका कर्मविभाग, राजधर्म वर्णन, विवाह और लोकाचार पद्धति, श्राद्ध और प्रायश्चित्त विधि, ये सब ही पुराणोंकी मज्जा-मज्जामें ग्रथित किये गये हैं । स्थान स्थानमें श्रुति, स्मृतिके वचन ठीक ऐसे के ऐसे उद्धृत किये गये हैं । कहीं मनुसे, कहीं याज्ञवल्क्यसे, कहीं पराशरसे चतुराश्रमके विधिनिषेध उद्धृत किये गये हैं । स्मृतियोंमें दानधर्म श्रेष्ठ कहा गया है, इसलिये पुराणोंमें लिखा है कि, दान श्रेष्ठ धर्म है, दानसे ही सब कुछ और मुक्ति एवं राज्य भी लाभ होता है । वर्ण और आश्रमका धर्म, जन्म और कर्मोंसे वर्णोंकी व्यवस्था, प्रकृतिके अनुसार चार वर्ण और चार आश्रमका वर्णन, अहिंसा, काम-क्रोध-लोभ त्याग, दया, सत्यनिष्ठा आदि सभी वर्णोंके साधारण धर्म और स्त्री पुरुष ब्राह्मण शूद्र आदिके विशेष धर्म, ये पुराणोंके पन्ने-पन्नेमें बताये गये हैं। याज्ञवल्क्य संहितामें कन्याके विवाहके विषयमें जो कुछ लिखा गया है, गरुड़ पुराणमें भी ठीक वैसा ही वर्णन है । असवर्णविवाह जो दोषयुक्त है, उसका वर्णन स्मृति और पुराण दोनोंमें ही एक रूपसे किया गया है । दत्ता कन्याका पुनर्दान आदि विषयोंकी बहुत ही निन्दा की गयी है । गर्भाधान,पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण आदि संस्कारोंकी विधि प्रशंसा और ये सब संस्कार पहले नियमके साथ होते थे, इन सब विषयोंका वर्णन पुराणोंमें भूरि-भूरि देखनेमें आता है । समाजधर्मके सदृश राजधर्मका भी वर्णन किया गया है । मनु संहितामें जिस प्रकारसे नियमबद्ध अनुशासनप्रणाली और करग्रहण आदिकी व्यवस्था तथा चौर्य्य दण्डकी विधि बतायी गयी है; उस प्रकारसे अग्निपुराण और गरुड़पुराणमें भी देखनेमें आती है । राज्यरक्षा और प्रजा-पालन आदिके विषयमें भी बहुत उपदेश किये गये हैं । धनुर्विद्या, आग्नेयास्त्रप्रयोग और बहुत प्रकारकी युद्ध विद्याके वर्णन अग्निपुराण और देवीपुराणमें मिलते हैं । गरुड़पुराणमें ज्योतिर्विद्या, सामुद्रिकविद्या, आयुर्विद्या और चिकित्सा प्रकरण विस्तृतरूपसे वर्णित किये गये हैं । प्राचीन भारतकी चित्र विद्या

और शिल्पकला भिन्न-भिन्न पुराणोंमें पूर्णरूपसे बतायो गयो है। उन्नत समाजका आदर्श किस प्रकारका होना चाहिये, प्राचीन कालमें समाज-बन्धन किस प्रकारका था, राजनीति किस प्रकारकी थी, गृहधर्म कैसे चलता था, किस रीतिसे युद्धादि हुआ करते थे, चिकित्सा किसप्रकारकी होती थो, शिल्प, साहित्य, काव्य, व्याकरण और अलङ्कार शास्त्रोंमें आर्य्यजातिने कितनी उन्नति को थो, इन सबोंका मधुर चित्र पुराणोंमें पूर्णतया खींचा गया है। यही पुराणोंकी पूर्णता है।

सबसे अधिक पुराणोंकी अपूर्व पूर्णता विचित्र चरित्रोंके वर्णनमें है। मनुष्यकी प्रवृत्ति ऐसी है कि, केवल धर्मके शुष्क उपदेशोंसे उस प्रवृत्तिपर विशेष प्रभावविस्तार नहीं होता है। पापदग्ध हृदयरूपी मरुभूमिमें शुष्क विज्ञानका शुष्क उपदेश जलते हुए शुष्क पवनकी तरह प्रवाहित होकर उसको और भो शुष्क कर देता है; परन्त जिस हृदयमें पौराणिक चरित्रसमूहकेद्वारा कभी प्रेमकी पवित्र धारा, कभी दयाकी पवित्र धारा, कभी अलौकिक स्वार्थत्यागकी पवित्र धारा, कभी सत्य पालनकी पवित्र धारा और कभी धर्मजीवनकी पवित्र धाराने शतमुखी भागीरथीकी शतधाराकीतरह प्रवाहित होकर उस हृदयसमुद्रको पवित्र कर दिया है, वही हृदयवान् मनुष्य जानता है कि, धर्मजगत्में और मनुष्य जगत्में पुराणोंकी सब प्राणियोंकेलिये क्या कल्याणकारिता है ? पुराणोंमें चातुर्वर्ण्य और चतुराश्रमके आदर्श पुरुषोंका चरित्र विद्यमान है। पुराणोंमें आदर्श पुरुष, आदर्श ज्ञानी, आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श सती, आदर्श ऋषि, आदर्श कर्मी, आदर्श वीर और आदर्श भक्तोंके चरित्र विद्यमान हैं, जिन सब चरित्रोंपर मनन करनेसे विचारशोल मनुष्यगण अवश्य ही समझ सकेंगे कि, जीवननदीके प्रवाहको नियमित करके ज्ञान और मनुष्यत्वके अपार समुद्रमें विलीन करनेकेलिये ज्ञानाधार वेदने भी जगज्जीवोंका उतना कल्याण नहीं किया है, जितना केवल पुराणोंके पवित्र चरित्रोंकेद्वारा हो गया है। आज यदि पुराण न होते, तो ब्रह्म-

तेजका वह अपूर्व आदर्श, जिस आदर्शके सन्मुख उस महाबली पराक्रान्त अहङ्कारी महाराजा विश्वामित्रजीका भी अहङ्कार चूर्ण विचूर्ण हो गया था और जिस आदर्शने उनको राज्यत्याग कराकर वनवासी तपस्वी बना दिया था, वह आदर्श कहां मिलता ? दरिद्र ब्राह्मण महर्षि वशिष्ठजीके पाससे महाराजा विश्वामित्रने कामधेनु पानेकेलिये प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने जब कामधेनु देना स्वीकार नहीं किया, तब विश्वामित्रजीने अपने सैन्योंको लेकर बलात् उस धेनुको ले जानेकेलिये यत्न किया, ब्रह्मतेजसे पूर्ण कलेवर महर्षि वशिष्ठजीने ब्रह्मदण्डको मन्त्रपूत करके सामने खड़ा कर दिया, इधर विश्वामित्रकी अस्त्रधारा वर्षा ऋतुमें जलकी धाराकी तरह वशिष्ठजीके चारों ओर छा गयी, अस्त्रोंकी झनझनाहट और सैन्योंके कोलाहलने दिग्दिगन्तको आपूरित कर दिया, दिव्य अस्त्र समूहकी ज्योतिसे मानों चारोंओर बिजली चमकने लग गयी, किन्तु ब्रह्मतेजके सन्मुख, सूर्य्यके प्रकाशके सन्मुख दीपककी तरह विश्वामित्रजीके समस्त भीषण अस्त्रसमूह व्यर्थ हो गये, उसी ब्रह्मतेजके मूर्त्तिरूप दण्डने समस्त अस्त्र और शस्त्रोंको निस्तेज कर दिया, जिससे अत्यन्त दुःख और क्षोभके साथ विश्वामित्रको कहना पड़ा कि "क्षत्रिय बलको धिक्कार है, ब्रह्मतेजका बल ही बल है, एक ब्रह्मदण्डने मेरे सब अस्त्रोंका नाश कर दिया।" इस प्रकारका ब्रह्म तेजका आदर्श, जो कि हमारे पूर्वपुरुषोंमें विद्यमान था, जिसका स्मरण करनेपर आज भी निर्वीर्य्य ब्राह्मणोंके हृदयोंमें उत्साह फैलता है, ऐसे ब्रह्मतेजका आदर्श भारतको कहां मिलता, यदि पुराण न होते। वह ऋषिचरित्र, जो ऋषि आजन्म उञ्छवृत्तिको अवलम्बन करके जगत्को ज्ञानधनसे धनी करनेकेलिये सदैव उद्यत रहा करते ते, जिन्होंने कभी तो कण भक्षण करके, कभी फलमात्र आहार करके और कभी वायुपान करके, हमारे-लिये निशि दिन चिन्ता करते करते हमारी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये ज्ञान भण्डार, शक्ति भण्डार, विद्या भण्डार, औषधि भण्डार आदि

समस्त भण्डारोंसे संसारको भर दिया था, जिन भण्डारोंको निशि दिन अज्ञानके कारण अपव्यय करनेपर भी उसमेंसे अणुमात्र भी कमी नहीं होती, किन्तु कल्पतरुकी तरह सदैव वे हमारी वासनाओंको पूर्ण करनेके-लिये प्रस्तुत रहते हैं, उन सब ऋषियोंके आदर्श हम लोगोंको कहां प्राप्त होते, यदि पुराण न होते। दधीचिका वह अपूर्व स्वार्थत्याग, जिस स्वार्थत्यागका ज्वलन्त दृष्टान्त मानव जगत्के इतिहासमें कल्पान्त पर्य्यन्त ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखा रहेगा, दधीचि ऋषिका वह अपूर्व प्राणत्याग और देवताओंके लिये अपना अस्थिप्रदान क्या सामान्य त्यागका दृष्टान्त है ? जगत्में प्राण सबको ही प्रिय है, प्राणकी रक्षाकेलिये पुत्रस्नेहपरा-यण माता और वात्सल्यपरायण पिता भी दुष्कालके समय क्षुधार्त्त होकर जिस पुत्रको अपने हाथसे मारनेमें भी कुण्ठित नहीं होते, उसी प्रियतम प्राणको परोपकारकेलिये उत्सर्ग कर देनेका दृष्टान्त कहां मिलता, यदि पुराण न होते। इन सब दृष्टान्तोंसे केवल व्यक्ति तथा जातिका चरित्र गठन ही नहीं होता है अधिकन्तु वेदके गम्भीर तात्प-र्य्योंकी, लौकिक तथा परकीय भाषाकेद्वारा मधुररूपसे व्याख्या होती है और इतिहासमूलक गाथाओंकेद्वारा आदर्श चरित्रोंकी रक्षा बनी रहती है। वास्तवमें ऐसे चरित्रवर्णनकेद्वारा ही यथार्थमें किसी जातिके महत्त्व आदि प्राचीनत्वकी रक्षा हो सकती है। लौकिक इतिहासोंके-द्वारा पोथेके पोथे भर डालनेसे जातिकी यथार्थ उन्नति उतनी नहीं हो सकती।

नित्यज्ञानप्रकाशक वेद और उसके व्याख्याग्रन्थरूपी पुराणमें समाधि भाषा, लौकिक भाषा, परकीय भाषारूपी भाषात्रयके अतिरिक्त रुचि दिलानेवाले रोचक तथा फलश्रुति आदिको ज्योंका त्यों कहनेवाले यथार्थ और पापसे डरानेके अर्थ भय दिलानेवाले भयानक, इस प्रकारसे तीन वर्णन शैलियां भी पायी जाती हैं। उसीप्रकार अध्यात्म अधिदैव

अधिभूत, इन त्रिविध भावोंसे पूर्ण सिद्धान्त भी रहते हैं, यथा अधिदेव, और अध्यात्म रासका वर्णन देवीभागवतमें और अधिभूत रासका वर्णन विष्णु भागवतमें है। इनको भी तीनों भाषाओंके समान जान कर तब पुराणोंकी व्याख्या करने योग्य है, नहीं तो पुराण समझमें नहीं आ सकते। इस प्रकारसे तीनों भाषा, तीनों भाव, तीनों वर्णनशैलियां तथा विविध उपदेशोंकेद्वारा पुराणने जगत्का अशेष कल्याण किया है, जिसकी भूरि भूरि प्रशंसा केवल इस देशके विद्वान्गण ही नहीं अधिकन्तु अनेक पाश्चात्य पण्डितोंने भी की है। अध्यापक (१) हीरेन साहबने कहा है कि "पुराणोंमें अति अद्भुत उपदेशपूर्ण विषयसमूह अति विस्तारित-रूपसे लिखे गये हैं"। मिस (२) मैनिङ्गने कहा है, "स्तुतिगान तथा उपदेशदानके लिये पुराणोंकी रचना अति अपूर्व है। इनमें सांख्य तथा वेदान्तके गंभीर तत्त्व भरे हुए हैं"। रामायणके विषयमें मोनियर विलि-यम (३) साहबने कहा है, "संस्कृत साहित्यका अपूर्व भण्डार रामायण है। इसमें राम और सीताके जो चरित्र बताये गये हैं, इनकी तुलना संसारमें नहीं मिलती है। क्या वीरताका आदर्श क्या मधुरताका आदर्श, क्या सच्चरित्रताका आदर्श, क्या राजनीतिका आदर्श, क्या समाज नीतिका आदर्श, क्या धर्मनीतिका आदर्श, सभीका भण्डार रामायण है"। इसी प्रकारसे जोन्स, हीरेन, ग्रीफीथ, स्काट आदि साहबोंने भी रामायणकी विशेष प्रशंसा की है। रामायणकी तरह महाभारतकी भी अति प्रशंसा पश्चिमीय विद्वानोंने की है। एमेरिकाके हैसलार साहबने २१ जुलाई सन् १८८८ ई० को डाक्टर पी० सी० रायको जो पत्र लिखा था, उसमें महाभारतके विषयमें उन्होंने लिखा था—"मेरे सारे जीवनमें

---

1. Historical Researches.
2. Ancient and Mediaeval India.
3. Indian Epic Poetry.

किसी पुस्तकके पढ़नेसे मुझे इतना आनन्द नहीं आया, जितना महाभारतके पढ़नेमें आया है। महाभारतने मेरेलिये एक नवीन जगत्का दृश्य खोल दिया है और इसमें सत्य, धर्म, न्यायपरता तथा ज्ञानके जो आदर्श बताये गये हैं, उनसे मैं चकित हो गया हूँ। परमात्मा तथा सृष्टिके विषयमें भी मुझे महाभारतसे अनेक ज्ञान प्राप्त हुए हैं।" इस प्रकारसे मेरी स्काट, एवार्थ, अध्यापक विलसन आदि पश्चिमी विद्वानोंने भी महाभारतकी विशेष प्रशंसा की है। येही सब आर्यजातीय पुराणोंकी महिमाके दृष्टान्त हैं।

—:००:—

दार्शनिक उन्नतिकी पराकाष्ठा।

(२०)

जिस प्रकार बहिर्जगत् सम्बन्धीय उन्नतिका प्रथम सोपान शिल्प सम्बन्धीय उन्नति समझी जा सकती है, उसीप्रकार अन्तर्जगत् सम्बन्धीय उन्नतिका प्रथम सोपान दार्शनिक उन्नतिको मान सकते हैं। जिस प्रकार राजसिक बुद्धिका विकाश शिल्प उन्नतिद्वारा प्रमाणित होता है, उसीप्रकार सात्त्विक बुद्धिका विकाश दार्शनिक उन्नतिद्वारा समझा जा सकता है। इस सात्त्विक बुद्धिके उन्नतिरूप तथा अन्तर्जगत्-सम्बन्धीय उन्नतिरूप दार्शनिक उन्नतिके विषयमें प्राचीन भारत सबसे अग्रगण्य तथा पूर्णताको प्राप्त हुआ था, इसमें सन्देह मात्र नहीं है। पूज्यपाद महर्षिगणप्रकाशित न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन, सांख्य दर्शन, कर्ममीमांसा दर्शन, दैवी मीमांसा दर्शन और ब्रह्ममीमांसा अर्थात्

वेदान्त दर्शन ही इस विचारमें प्रधान प्रमाण हैं। श्रीभगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र कथित श्रीमद्भगवद्गीताका सगर्भयोगविज्ञान तथा श्रीभगवान् बुद्धदेवप्रचारित अगर्भयोगविज्ञान ही इस विचारमें सर्वोत्तम प्रमाण हैं। जिस प्रकारके दार्शनिक विचारपथ प्राचीन भारतीय सप्तदर्शनोंने प्रचारित किये हैं, जिस प्रकारके दार्शनिक सिद्धान्त सगर्भ और अगर्भ (ईश्वर आश्रयसे जो साधन किया जाय, उसका नाम सगर्भ और ईश्वर-आश्रयसे रहित होकर जो साधन किया जाय, उसको अगर्भ साधन कहते हैं)रूपसे निर्णय किये गये हैं, उस प्रकारकी विचारपूर्णता, उस प्रकारका अकाट्य सिद्धान्त, उस प्रकारके अभ्रान्त सारगर्भ और सार्वभौम दार्शनिक विचार न पूर्वकालमें कभी किसी जातिद्वारा आविष्कृत हुए हैं और न भविष्यत्में और किसी जातिद्वारा होनेकी आशा है। इस प्रकारके सार्वभौम दर्शन शास्त्रोंके आविष्कारसे प्राचीन भारत ही दार्शनिक उन्नतिमें आदि गुरु तथा उच्च आसन प्राप्त करने योग्य है, इसमें सन्देह ही नहीं। हिन्दु दर्शनशास्त्रोंका साक्षात् सम्बन्ध जिसप्रकार वैदिक धर्म्मके साथ है, उस प्रकारका दर्शन शास्त्रसम्मत और कोई भी धर्म्म पृथिवीपर देखनेमें नहीं आता। साधारण दृष्टिसे ही अनुमान हो सकता है कि, आर्य्यधर्म्मके सब सिद्धान्त दार्शनिक भित्तिपर स्थित हैं; परन्तु इस धर्मसे अतिरिक्त ईसाई अथवा महम्मदीय आदि किसी धर्म्मके साथ भी दार्शनिक प्रमाणोंका कोई भी सम्बन्ध दिखायी नहीं पड़ता। ईसाई और महम्मदीय आदि सिद्धान्त केवल विश्वासमूलक हैं; परन्तु आर्य्यधर्म्मके सब सिद्धान्त ही दार्शनिक विचारद्वारा कृतनिश्चय हैं। आर्य्यजातिके अतिरिक्त जितनी और जातियाँ मध्यवर्ती कालमें पृथिवीपर वर्तमान थीं, उनमेंसे केवल ग्रीक जाति और रोमन जातियोंके कुछ कुछ सामान्य दार्शनिक ग्रन्थ देखनेमें आते हैं; परन्तु बुद्धिमान् जन उनके पाठ करनेसे ही जान सकेंगे कि, उनकी ज्ञानभूमि भारतीय दर्शन शास्त्रोंकी ज्ञान भूमिके सामने बालकके ज्ञानवत् ही प्रतीत हुआ करती है।

इसके उपरान्त आजकलके नवीन यूरोपीय दर्शनशास्त्रसमूह चाहे कितने ही विस्तारको प्राप्त हो गये हों, चाहे यूरोपीय नवीन दार्शनिकोंने कितने अगणित पुस्तक इस शास्त्रपर लिख डाले हों; परन्तु सूक्ष्मविचारद्वारा दृष्टि डालनेसे यही प्रतीत होगा कि, उनके वाक्यसमूह भारतीय वृद्धगुरुके संमुख बालक विद्यार्थियोंकी सरल तथा सारहीन जिज्ञासाओंके सदृश ही हैं। नवीन यूरोपीय दार्शनिक पण्डित मिस्टर स्पेन्सर (Mr Spencer.) और मिष्टर मिल (Mr. Mill) यदिच अपनी अपनी बुद्धि द्वारा अन्त-र्जगत्में थोड़ी दूर अग्रसर हुए हैं, यदिच उसमेंसे किन्हीं किन्हीं पण्डितोंने अन्तर्जगत्के अनेक गंभीर विषयोंपर बहुतसा विचार कर डाला है; तथापि प्रवीण भारत तथा नवीन यूरोप, इन उभय देशीय दर्शनशास्त्रके ज्ञातामात्र ही साधारण विचारसे समझ सकेंगे कि, यूरोपियन अपने दार्श-निक विचारमें अभीतक वृद्धगुरु भारतके संमुख बालक विद्यार्थी ही हैं।

इस संसारमें दो शक्तियाँ प्रतीत होती हैं, एक जड़ दूसरी चेतन, एक शारीरिक शक्ति दूसरी जीवनी शक्ति, एक प्रकृति शक्ति, दूसरी पुरुष शक्ति; जिनमेंसे जड़ शक्ति स्थूल और चेतन शक्ति अतिसूक्ष्म अतीन्द्रिय है। जड़ शक्तिका राज्य जगत्सृष्टि विस्तारमें और चेतनभावका राज्य उससे परे है। जड़ शक्ति साधारणरूपसे अनुभव योग्य है, किन्तु चेतन-भाव जड़राज्यकी शेष सीमामें पहुँचनेपर केवल मात्र अनुमान ही करने योग्य है। आज दिन तक यूरोपमें जितने दर्शनशास्त्र प्रकाशित हुए हैं, वे सब अभीतक जड़ जगत्में ही भ्रमण कर रहे हैं, यदिच उन्होंने जड़ जगत्में बहुत कुछ अन्वेषण कर लिया है, तत्रच चैतन्यजगत्को वे दूरसे भी नहीं निरीक्षण कर सके हैं; यदिच यूरोपीय विद्वानोंने जड़राज्यकी कुछ कुछ छान बीन की है तथापि उनको अभीतक यह भी ज्ञान नहीं है कि, इस जड़भावसे अतिरिक्त और कोई चेतनभाव है या नहीं। जब उनकी यह दशा है, जब देखते हैं कि, वे प्रकृति राज्यमें ही भ्रमण कर

रहे हैं और उन्होंने प्रकृतिको ही सब कुछ करके मान रक्खा है, जब देखते हैं कि, पुरुषका सामान्य ज्ञानमात्र भी उनको अभीतक नहीं मिला है, जब देखते हैं कि जीवभाव, पुरुषभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव आदि चैतन्यजगत्सम्बन्धीय किसी भावका भी यथार्थरूप उनके अनुमानमें नहीं आया और जब देखते हैं कि, अभीतक यूरोपीय दार्शनिकगण जड़ जगत्के माया राज्यमें ही अपने आपेको भूल रहे हैं; तब कैसे नहीं विश्वास करेंगे कि, वे दार्शनिक ज्ञानमें अभी बालक ही हैं। अन्तर्जगत्सम्बन्धीय विचाररूप महासागरके दो कूल हैं; एक ओरका कूल तो यह विस्तृत संसार है और दूसरे ओरका कूल ब्रह्मसद्भावरूप निर्वाणपद है; इस विचार भूमिकी एक ओर संसाररूप इन्द्रियगम्य विषय और दूसरी ओर अतीन्द्रिय ब्रह्म पद है। यूरोपीय दार्शनिकगण यदिच प्रथम कूलकी ओरसे आगे बढ़ गये हैं परन्तु वे इस विस्तृत महाज्ञान समुद्रमें थोड़ी दूर अग्रेसर होते ही निराश हो पुनः पीछेकी ओर देखने लगे हैं; और अपनी असम्पूर्ण ज्ञान शक्तिके कारण यही समझने लगे हैं कि, इस महासमुद्रके चारोंओर पूर्व्व भूमिके अनुसार दृश्य विषय संसार ही है; उनको केवल एक कूलका ही सम्वाद विदित होनेके कारण वे केवल इस महासागरके बीच दिग्भ्रम वश हो रहे हैं, इस कारण उनको यही प्रतीत होता है कि, जो कुछ है सो जड़ प्रकृति ही है। आर्यदर्शनशास्त्र तथा यूरोपीय दर्शनशास्त्रोंको मनोनिवेशपूर्वक अध्ययन करनेसे ही बुद्धिमान् लोग जान सकेंगे कि, अपने आर्य्य दर्शनशास्त्रोंके समुख यूरोपीय दर्शन अभी तक दर्शन नाम धारण करने योग्य ही नहीं हुए हैं।

भारतीय दर्शन शास्त्रोंकी श्रेष्ठताके विषयमें केवल अपना ही यह मत नहीं है किन्तु संस्कृतज्ञ सकल यूरोपीय विद्वानोंने ही एक वाक्य होकर अपने आर्य्य दर्शन शास्त्रोंकी बहुत ही प्रशंसा की है, उन्होंने एक वाक्य होकर ऐसा ही कहा है, अन्यदेशवासी तथा अन्य

धर्म्मावलम्वी होनेपर भी उन सबोंने यही सम्मति प्रकाशित की है कि, पृथिवीपर प्राचीन भारतवासी ही दार्शनिक जाति (Nation of philosophers) हैं, यदि अभीतक कोई उन्नत तथा पूर्ण दर्शनशास्त्र जगत्‌में प्रकाशित हुआ है, तो वह भारतीय दर्शनशास्त्र ही है। प्रोफेसर मेक्स-मूलर (१) ने कहा है कि "जिस जातिमें सभ्यता तथा उन्नतिकी पराकाष्ठा हो जाती है, उसीमें दार्शनिक ज्ञानका प्रकाश होता है। आर्यजाति स्वभावतः दार्शनिक जाति है। इसलिये इस जातिमें सकल प्रकारकी उन्नतिकी पराकाष्ठा हुई थी, यह सिद्ध होता है।" श्लेगेल (२) साहबने कहा है कि "ग्रीक जाति तथा समस्त यूरोपीयन जातियोंकेद्वारा आविष्कृत दर्शनशास्त्रकी ज्योति आर्यदर्शनशास्त्रकी ज्योतिके सामने, सूर्यके सामने खद्योतकी तरह है।" प्रोफेसर (३) बेवर साहबने कहा है—"दार्शनिक राज्यमें प्राचीन आर्यजातिकी चिन्ता-शक्तिने उन्नतिकी पराकाष्ठाको प्राप्त किया था।" हन्टर (४) साहवने कहा है, जड़ "पदार्थ, मन, वुद्धि, आत्मा, कर्म अकर्म, सुख, दुःख आदिके विषयमें आर्यदर्शन-शास्त्रमें बहुत ही उत्तम विचार किया गया है, जिसके अभावसे ग्रीक, रोमन आदि जातिगण अन्धकारमें थीं।" जोर्नस (५) जार्णा साहवने कहा है कि "आत्माकी नित्यताके विषयमें आर्यदर्शनशास्त्रोंमें जो सिद्धान्त निर्णय किया गया है, वह प्लेटो तथा सार्क्रेटिसके द्वारा निर्णीत सिद्धान्तसे बहुत ही उत्कृष्ट है।,, कोलब्रुक (६) साहबने कहा है, "दार्श-

1. Ancient Sanskrit Literature.
2. History of Literature.
3. Indian Literature.
4. Indian Gazetteer.
5. Therogony of the Hindus.
6. Transaction of the R. A. S.

निक जगत्में आर्यगण गुरु हैं और समस्त जगत् उनका शिष्य है।" श्लेगेल, (१) प्रिन्सेप, मोनियर विलियम आदि साहबोंने कहा है कि—"पिथागोरस आदि कई एक ग्रीक दार्शनिक पण्डित भारतवर्षमें आये थे और यहाँसे ही उन्होंने दर्शनिक शिक्षा पायी थी।" इस प्रकारसे दार्शनिक उन्नतिके विषय में अगणित यूरोपीय विद्वान्गण सम्मति दान कर चुके हैं।

भारतीय दर्शनशास्त्र वहुत ही उन्नत हैं, भारतवासी दर्शनिक जाति हैं, ऐसे प्रमाणयुक्त वाक्य सब भारत-इतिहासज्ञ यूरोपवासी एक वाक्य होकर कहा करते हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र उन्नत हैं, इसमें तो सन्देह ही नहीं रहा क्योंकि जहाँ सर्व्वसम्मति है, वहाँ सन्देह रह नहीं सकता, किन्तु भारतीयदर्शनोंमें कहीं-कहीं विचारभेद देखनेसे कोई-कोई विद्वान्गण दर्शनकी सत्यतापर सन्देह करने लगते हैं। वे कहते हैं कि, जब दर्शनोंमें नाना मतभेद हैं, तो मतोंकी एकता कैसे हो सकती है और जिज्ञासुओंका कल्याण कैसे हो सकता है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर इस प्रकारके सन्देह उठ ही नहीं सकते। भारतीय नाना दर्शन शास्त्रोंमें जो मतभेदसा प्रतीत होता है, वह वास्तवमें मतभेद नहीं है किन्तु अधिकारभेदके अनुसार पथभेदमात्र है। जब देखते हैं कि, सब शास्त्र ही अग्रसर होते हुए शेषमें एकमात्र लक्ष्यस्थलपर ही पहुँच जाते हैं, जब देखते हैं कि सबका बर्ताव चाहे कैसा ही हो किन्तु अवलम्बन एक ही है, तब कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि, अपने आर्य्यशास्त्रोंमें वास्तवमें मतभेद है। यदिच सप्त दर्शनोंमेंसे वैशेषिक और न्यायदर्शन परमाणु विचार द्वारा पदार्थ निर्णय करता है, योगदर्शन अष्टाङ्गयोग-विचार करता है, सांख्यदर्शन प्रकृति-पुरुष-पृथक्ताका विचार करता है,

1. History of Literature, India in Greece, Indian Wisdom

कर्म मीमांसा दर्शन कर्म्मकी विचित्रता तथा कर्म्मप्रभाव वर्णनमें प्रवृत्त है, दैवीमीमांसादर्शन भक्तिके विविध भेदोंका वर्णन तथा उससे भगवत्-प्राप्तिका वर्णन कर रहा है और वेदान्तदर्शन ज्ञानविस्तार द्वारा जीव ब्रह्मकी एकता सिद्ध करता हुआ अद्वैतभावकी सिद्धि कर रहा है; तत्रच सूक्ष्म विचार द्वारा यही सिद्धान्त होगा कि, सब ही एकमात्र वेदप्रतिपाद्य मुक्ति पदके ज्ञानविस्तारमें ही तत्पर हैं; कार्य्यकारण-अन्वेषणद्वारा यही समझमें आयेगा कि, ये सब दर्शनशास्त्र ही विभिन्न अधिकारियोंको विभिन्न ज्ञानभूमि-स्थित मार्गद्वारा एकमात्र लक्ष्यस्थलपर पहुँचा रहे हैं। यह यथार्थ है कि, कर्ममीमांसादर्शन कर्म्मद्वारा ही मुक्तिसाधनपथमें नियोजित करता है, किन्तु सांख्यदर्शन केवल प्रकृतिपुरुषविचारद्वारा ही मुक्तिका साधन वर्णन करता है। यह यथार्थ ही है कि, भक्तिप्रतिपाद्य दर्शनशास्त्रसमूह ईश्वर भक्तिको मुक्तिका प्रधान कारण करके वर्णन करते हैं किन्तु ज्ञानप्रतिपाद्य दर्शनशास्त्रसमूह ज्ञानको ही मुक्ति प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय कह कर सिद्ध करते हैं। सार्वभौम विचारदृष्टि द्वारा यही सिद्धान्त होगा कि, वे सब एक ही लक्ष्यको स्थिर कर रहे हैं, उपाय निर्णय करनेमें मतविरोध होनेपर भी लक्ष्यनिर्णय करनेमें कोई भी मतभेद नहीं प्रमाणित होता। आर्य्यशास्त्रोक्त नाना दर्शनशास्त्रोंमें यदिच ज्ञानभूमि तथा अधिकार भेदकेअनुसार विचारभेद पाया जाता है, तत्रच निरपेक्ष सार्वभौम दृष्टिसे देखनेपर यही प्रतीत होगा कि, वास्तवमें पूज्यपाद महर्षियोंके मतमें विरोध कहीं भी नहीं है। प्रथम तो यही विचार करने योग्य है कि, एक ही आचार्य्यने नाना स्थानपर नाना प्रकारके उपदेश दिये हैं, एकमात्र श्रीभगवान् वेदव्यासजीने वेदान्तशास्त्र वर्णन करते समय सब कुछ खण्डन कर डाला है, परन्तु पुनः उन्हींने श्रीमद्भागवत आदि पुराण वर्णन करते समय भक्ति तथा कर्म्मको ही प्रधान अवलम्बन सिद्ध कर दिखाया है; इसी प्रकार महर्षि शाण्डिल्य, याज्ञवल्क्य आदिकोंके नाना स्थानोंमें नाना उपदेश पाये जाते हैं; यदि

वास्तवमें इन स्वतन्त्र अधिकारोंमें भेद बुद्धि रहती, तो एकही आचार्य्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्थानोंमें उन विषयोंका वर्णन कदापि नहीं करते। वैदिक सप्त दर्शनशास्त्रका विशेषत्व यह है कि, वे यूरोपीय दर्शनशास्त्रके समान अलग अलग दर्शनकर्त्ताके बुद्धिविलाससे उत्पन्न नहीं हैं। वे सातों स्वाभाविक तथा नित्य सिद्धान्तोंसे युक्त हैं। आर्योंके विज्ञानके अनुसार सात अज्ञान भूमियाँ और सात ज्ञान भूमियाँ मानी जाती हैं, उनका सिद्धान्त यह है कि, सातों अज्ञान भूमियाँ अलग अवस्थाओंमें विभक्त हैं, यथा उद्भिदोंके समष्टि चिदाकाशमें प्रथम अज्ञानभूमिका स्थान है, दूसरी अज्ञानभूमिका स्थान स्वेदजोंके चिदाकाशमें, तीसरीका स्थान अण्डजोंके चिदाकाशमें और चौथी अज्ञान भूमिका स्थान जरायुजोंके चिदाकाशमें हैं। इसके बाद मनुष्यका अधिकार प्रारम्भ होता है, उसमें शेष तीन अज्ञानभूमियाँ रहती हैं, यथा—देहात्मवादियोंके अन्त:करणमें एक, देहातिरिक्त आत्मवादियोंके अन्तःकरणमें दूसरी और आत्मातिरिक्त शक्तिवादियोंके अन्त:करणमें तीसरी अज्ञान भूमि है। इन तीनोंमें सब अवैदिक दर्शनोंका समावेश हो जाता है। उसके बाद सात ज्ञानभूमियाँ यथाक्रम प्रारम्भ होती हैं। उन्हीं सातोंके प्रथमप्रदर्शक सातों वैदिक दर्शन हैं। प्रथम ज्ञानभूमिका दर्शन न्याय दर्शन, दूसरीका वैशेषिक, तीसरीका योग, चौथोका सांख्य, पांचवींका कर्ममीमांसा, छठींका दैवी-मीमांसा और सातवींका ब्रह्ममीमांसा दर्शन है। इस प्रकारसे दर्शन-शास्त्रके आविष्कर्त्ता, ज्ञान भूमियोंके प्रथम दर्शक त्रिकालज्ञ आर्य महर्षि-योंने सातों ज्ञानभूमियोंको दिखानेकेलिये और उनमें जिज्ञासुओंको यथाक्रम आरूढ़ करके मुक्ति राज्यमें पहुंचानेकेलिये सप्त दर्शनोंका आवि-र्भाव किया है। अत: सिद्ध हुआ कि, आर्य दर्शन शास्त्र सर्वथा एक लक्ष्य युक्त, अति महान्, अलौकिक पूर्णताकेद्वारा सुशोभित तथा सर्वजन-कल्याणकर है, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

—:०:—

परलोक और अन्तर्जगत् ।

(२१)

इस संसारमें सबसे कठिन प्रश्न परलोकका है। परलोक विचारमें प्राचीन कालके महर्षिगण जितने अग्रेसर हुए थे, उतनी अग्रगामिता आज दिन तक पृथ्वीकी किसी मनुष्य जातिको नहीं प्राप्त हुई है। परलोक विचारमें आज मनुष्य समाजकी सब जातियाँ विशेषत: पाश्चात्य यूरोपीय जाति अभी तक बालक ही है, परन्तु पूर्णज्ञानी प्रवीण महर्षिगणने परलोकका संमुख स्थित पदार्थोंकी तरह स्पष्टरूपसे वर्णन कर दिखाया है। नवीन मनुष्य जातियोंमेंसे आजतक किसीको भी कुछ अनुभव नहीं है कि, परलोक क्या पदार्थ है और परलोकगत जीवोंकी क्या अवस्था होती है। अभीतक वे केवल बालकोंकी नाईं अन्धविश्वासोंपर ही भ्रमण किया करते हैं; परन्तु त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंने जीवोंके हितार्थ इस अतिगम्भीर विषयको अति सरलरूपसे वर्णन कर दिया है। अपनी त्रिकालविषयक बुद्धि और अभ्रान्त भविष्यत् दृष्टिद्वारा वे कह गये हैं कि जीव अमर है, वह कदापि नहीं मरता। वे कह गये हैं कि, जीवदेह तीन भागमें विभक्त है, यथा-कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर, जिनमेंसे जीवके मृत्यु होनेपर (जिसको हम लोग मृत्यु कहते हैं यथार्थमें वह केवल जीवका स्थूलशरीरपरिवर्तन मात्र है) स्थूलशरीर तो यहीं पड़ा रह जाता है और सूक्ष्मशरीर विशिष्ट जीव लोकान्तरमें गमन करके पश्चात् पुनर्जन्मको प्राप्त हो जाता है। वे कह गये हैं कि, जिस प्रकार मनुष्यगणका वासोपयोगी यह पृथिवी लोक है उसी प्रकार और भी अनेक लोक इस ब्रह्माण्डमें हैं। वे कह गये हैं कि, जिस प्रकार मनुष्य एक जीर्ण वस्त्रको परित्याग करके दूसरा नवीन

वस्त्र धारण किया करता है, उसी प्रकार जीवके कर्म्मानुसार जीवका जब एक देह काम देने लायक नहीं रहता, तब ही वह उस शरीरको त्याग करके दूसरा शरीर ग्रहण करनेमें प्रवृत्त हो जाता है। वे कह गये हैं कि, यह संसार पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पञ्च तत्त्वोंसे बना हुआ है, किसी लोकमें एक तत्त्वकी अधिकता है और किसी लोकमें दूसरेकी, उसी रीतिके अनुसार अपने लोकमें पृथिवी तत्त्वकी अधिकता है और यहाँके जीवगण पार्थिव शरीरको ही प्राप्त होते हैं, परन्तु और ऐसे भी लोक हैं, जहाँ वायवीय और तैजस आदि शरीरविशिष्ट जीव भी हुआ करते हैं। वे कह गये हैं कि, पृथिवीसे उन्नत लोक स्वर्ग आदि और पृथिवीसे नीचेके लोक अतल वितल आदि संज्ञा-विशिष्ट हैं।

पूज्यपाद महर्षियोंने दार्शनिक युक्तिसे यह सिद्ध कर दिया है कि, श्रीभगवान्‌का विराट् देह अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंसे पूर्ण है। उनमेंसे प्रत्येक सूर्यके अधीन जितने ग्रहादि होते हैं, वे सब मिल-कर एक ब्रह्माण्ड कहलाते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डके नायक एक ब्रह्मा, एक विष्णु और एक रुद्र होते हैं। वे ही उस ब्रह्माण्डके ईश्वर हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड चौदह भुवनोंमें विभक्त है। ऊपरके सात लोकोंका नाम, यथा-भूलोक, भूवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, और सत्यलोक। इसी प्रकार नीचेके सात लोकोंके नाम, यथा—अतललोक, वितललोक, सुतललोक, तलातललोक, महातललोक, रसातललोक, और पाताललोक। ऊपरके सात लोकोंमें देवता और नीचेके सातलोकोंमें असुर वसते हैं। ऊपरके सातलोकोंमेंसे पहला लोक जो भूर्लोक है, उसके पुनः चार विभाग हैं, यथा—मृत्युलोक जहाँ मनुष्यादि जीव वसते हैं, प्रेतलोक जहां प्रेत बसते हैं, नरकलोक जहां पापी सजाकेलिये भेजे जाते हैं और पितृलोक जो इस भूर्लोकका साक्षात्

स्वर्गसुखभोगका लोक है। इस हिसाबसे यह मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें अंशका चतुर्थांश है। मनुष्य मृत्युके अनन्तर स्थूलशरीरको यहीं छोड़ ऊपर कथित तीन लोकोंमें जाता है अथवा ऊपरके छः लोक या नीचेके सात लोकोंमें जाता है। भोगके अन्तमें उसको पुनः मृत्युलोकमें दूसरा जन्म लेना पड़ता है। प्रायः ऊपर नीचेके सब लोकोंमेंसे मृत्यु-लोकमें पुनः आना स्थिर ही है; परन्तु ऊपरके छठवें या सातवें लोकसे अर्थात् तपोलोक या सत्यलोकसे प्रायः लौटना नहीं पड़ता। वहाँसे उन्नत जीव ज्ञान लाभ करके मुक्त हो जाता है। वैसी सृष्टि अर्थात् स्त्री पुरुषके रजोवीर्यद्वारा सृष्टि केवल इसी मृत्युलोकमें होती है। अन्य लोकोंमें ऐसी नहीं होती। केवल देवता लोग वैसा शरीर धारण कराकर जीवको तत्तत् लोकोंमें पहुँचा देते हैं। यहाँ काम करनेका मौका अधिक है, अन्य लोकोंमें ऐसा नहीं है, इसी कारण इस मृत्युलोकको सबसे आवश्यकीय करके महर्षियोंने वर्णन किया है।

महर्षिगण कह गये हैं कि, जीव अपने किये हुए कर्मकेअनुसार ही इन अच्छे और बुरे लोकोंको प्राप्त हुआ करता है और जिसप्रकारके कर्म्म वह करता रहता है, उसी क्रमके अनुसार वह उत्कृष्ट और निकृष्ट लोकोंमें जन्म लेता रहता है। वे कह गये हैं कि, स्वर्गादि उत्कृष्ट लोक और नरक आदि निकृष्ट लोक इन दोनोंमें ही भोगका अंश अधिक है; परन्तु हमारे इस मनुष्य लोकमें कर्म्म अर्थात् पुरुषार्थ करनेका अवसर अधिक मिलता है। वे कह गये हैं कि, जीव जितने उन्नत लोकोंको प्राप्त होता है, उतनी ही आध्यात्मिक आनन्दकी वृद्धि उसमें होती जाती है और मुक्तिपदका अनुभव अर्थात् मुक्तिपदके सुखका विचार करनेमें उसको अवसर अधिक मिलता जाता है। वे कह गये हैं कि, देहत्यागके अनन्तर जीवको मूर्च्छामय प्रेतत्व हुआ करता है, पश्चात् श्राद्ध आदि वैदिक कर्म्म और ईश्वर प्रार्थनासे उस प्रेतत्वका नाश होकर जीव

लोकान्तरको शीघ्र प्राप्त हो सकता है। वे कह गये हैं कि, यदिच सत् और असत् कर्म्मके अनुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट लोकोंमें जन्मलेनारूप आवागमन चक्र जीवके साथ ही लगा हुआ है, तत्र च मुक्तिपद कुछ और ही है और वह इन झगड़ोंसे अतीत है। वे कह गये हैं कि, यदिच मनुष्यगण अपनी इच्छाके अनुसार और लोकोंमें नहीं जा सकते, परन्तु स्वर्गादि लोकोंके उन्नत जीवगण अपनी इच्छाकेअनुसार इस पृथिवी आदिमें भ्रमण कर सकते हैं। वे कह गये हैं कि, उन्नत लोकके शरीर हमसे सूक्ष्मभूतविशिष्ट होनेके कारण हमारे नेत्रोंसे अदृष्ट रह सकते हैं; परन्तु उनमें भौतिक शक्ति अधिक रहनेके कारण वे अपने शरीरको हमारे दर्शन योग्य अवस्थामें भी परिणत कर सकते हैं। वे कह गये हैं कि, जीवके मृत्यु होनेके अनन्तर (अर्थात् स्थूल शरीर त्यागके बाद ही) उसको दूसरी योनि धारण करके नूतन स्थूल शरीर ग्रहण करना पड़ता है। वे कह गये हैं कि, यदिच लोकोंकी उत्कृष्टता और निकृष्टताके अनुसार जीवगण उत्कृष्ट और तत्त्वमय शरीरको प्राप्त हुआ करते हैं, परन्तु स्थूल, सूक्ष्म और कारण यह तीनों शरीर प्रत्येक जीवोंके साथ लगे हुए हैं, अर्थात् कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर सबमें एकरूप ही हैं, केवल कर्म्मफलके अनुसार जीव शरीरकी प्रकृतिके विस्तार अथवा संकोचको प्राप्त होकर अपने अपने कर्म्म-अनुसार अच्छे अथवा बुरे शरीरको धारण करके अच्छे अथवा बुरे लोकोंमें निवास किया करते हैं। वे कह गये हैं कि, जिस प्रकार आकाशका अन्त नहीं है, उसीप्रकार जीववासभूमि आकाश-भ्रमणकारी ब्रह्माण्डों तथा लोकोंकी भी संख्या नहीं हो सकती। अनन्त भगवान्‌की सृष्टिलीला अनन्त है।

पूज्यपाद महर्षिगण जो कुछ अनुभव करते थे अथवा जो कुछ कहते थे, सो वे अपनी त्रिकालदर्शिता और आध्यात्मिक ज्ञानसे ही कह सकते थे, भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालोंका ज्ञान

अभ्रान्तरूपसे उनमें था; क्योंकि योगशक्तिद्वारा समाधि बुद्धिसे वे सब कुछ जान लिया करते थे; परन्तु स्थूलदर्शी पश्चिमी विद्यामें वह शक्ति नहीं है; इस कारण पश्चिमी विद्वान्गण पारलौकिक विषयोंको उस रीतिपर अनुभव करनेके योग्य नहीं हैं और न हम आशा कर सकते हैं कि, वे केवल अपनी बुद्धिद्वारा अतीन्द्रिय सूक्ष्म पारलौकिक विषयोंको जान सकेंगे; तथापि नूतन आविष्कृत स्पीरीच्युअलीज्म (Spiritualism) म्यसमेरीज्म (Mesmerism) आदि विद्याओंकेद्वारा वहाँके बड़े बड़े बुद्धिमान् पण्डितोंने इस परलोक ज्ञानके विषयमें जो कुछ अनुभव किया है, केवल वही प्रमाण यहाँपर दे सकते हैं। इन विद्याओंके आविष्कारमें वर्तमान पाश्चात्य जगत् प्रशंसाके योग्य है, इसमें सन्देह नहीं। स्पीरीच्युअलीज्म विद्या दूसरे आत्माओंको बुलानेका नाम और म्यसमेरीज्म विद्या अपनी शक्तिद्वारा दूसरे पुरुषको निद्रामें लिटा कर अपने वशीभूत करनेका नाम है। इन दोनों विद्याओंद्वारा उन पण्डितोंने बहुतसे अतीन्द्रिय और सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयोंका आविष्कार किया है, जिनमेंसे पारलौकिकविषयक कुछ कुछ विवरण विचारार्थ प्रकाशित किया जाता है। आलेन करडेक साहबकी "स्वर्ग और नरक" नामक पुस्तकमें लिखा है कि, फ्रान्स देशकी राजधानी पेरिस नगरमें एक स्पीरी-च्युअलीज्म विद्याकी सभा थी, उसमें उस नगरके बहुत बड़े बड़े मनुष्य सभ्य थे। जिनमेंसे माँसन साहबके नामके एक सभ्य इस सभामें प्रतिष्ठित सभ्य समझे जाते थे। उनकी मृत्यु होनेके एक वर्ष पूर्व वे पीडित हुए और उस पीड़ामें उन्होंने नाना क्लेश पाया। शरीर त्याग करते समय उन्होंने इस सभाके सभापतिको एक पत्र लिखा कि "मेरे देहान्तर प्राप्तिके अनन्तर ही मेरी आत्माको आप लोग अवश्य बुलाइयेगा और किस किस रूपसे आत्मा शरीरको त्याग करता है और उस समय जो जो अनुभव होता है, इस विषयमें आप लोग मेरी आत्मासे विशेष प्रश्न करियेगा, तो मैं अवश्य ही उस सूक्ष्म शरीरमें आप लोगोंको

इस आध्यात्मिक ज्ञानका विस्तारित विवरण ज्ञात करूँगा"। सन् १८६२ ईस्वीकी तारीख २१ अप्रैलको इन साहबके परलोक गमनके थोड़ा देरके अनन्तर ही उस स्थानमें जाकर मृत शरीरके पास ही सभा अर्थात् चक्र करके सभ्यगण बैठे और नियमित ईश्वर उपासनाके पश्चात् उनकी आत्माका आवाहन किया गया। इस चक्रमें बहुत शीघ्र ही मृत-पुरुषका आत्मा आ गया, तब प्रश्न और उत्तर होने लगे।

प्रश्न—प्यारे भाई! तुम्हारी इच्छाके अनुसार इस समय हम लोगोंने तुमको बुलाया है।

उत्तर—भगवान्‌की स्तुति करो, उन्हींकी कृपासे मैं तुम्हारे पास इस समय आ सका हूँ; किन्तु मैं बड़ा ही दुर्बल हूँ, थर थर काँप रहा हूँ।

प्रश्न—परलोक गमन करनेके पूर्व तुमको यहाँ बड़ा ही कष्ट हुआ था, इस समय भी क्या तुमको वे सब कष्ट अनुभव होते हैं? दो दिन पहिलेकी अवस्थासे आजकी अवस्था मिलाकर कहो तो कि, तुमको कैसा अनुभव होता है?

उत्तर—पहिले जितने कष्ट थे, वे सब इस समय कुछ नहीं हैं। इस समय बड़ा सुख अनुभव होता है। मेरा शरीर नूतन बन गया है, जन्म ही नूतन अनुभव होता है। मृत्तिकाके शरीरसे आत्मा किस प्रकारसे निकला सो पहिले कुछ नहीं समझ सका। उस समय बहुत आत्मा अज्ञान अवस्थामें रहते हैं; किन्तु मरनेके पूर्व मैंने और मेरे प्रिय लोगोंने भगवान्‌की प्रार्थना की थी कि, मरनेके पश्चात् मुझको बात चीत करनेकी शक्ति बनी रहे और श्रीभगवान्‌की ही कृपासे मुझमें वह शक्ति इस समय है।

प्रश्न—मरनेसे कितने समय पश्चात् आपको ज्ञान प्राप्त हुआ था?

उत्तर—प्रायः आधा घण्टाके पश्चात्। उसकेलिये भी मैं भगवान्‌का गुणानुवाद करता हूँ।

प्रश्न—आप किस प्रकारसे जानते हैं कि, आप इस पृथिवीसे वहाँ गये हैं ?

उत्तर—इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। जब मैं पृथिवीमें रहता था, तब अपनी आयु सदा परोपकारमें व्यतीत करता था। इस समय सूक्ष्मभूमिमें रहकर सत्यानुसंधानका प्रचार करनेकेलिये आध्यात्मिक विज्ञानशास्त्र मनुष्योंमें प्रचारिता करूँगा। मैं अच्छा था, इस कारण अब इस समय सबल हुआ हूं—मानों नूतन कलेवर मिल गया है। यदि च मुझे इस समय आप देखेंगे तो पुनः उस गाल बैठे, दाँत गिरे बूढ़ेका मनन भूल जाँयगे; क्योंकि अब मैं पूर्ण नवयुवक बन गया हूँ। इस सूक्ष्मभूमिमें पूर्वके समान मांसका लोथड़ा बनकर देह धारण किये हुए विचरना नहीं पड़ता, यहाँका शरीर अति सूक्ष्म है। यह असीम विश्व जगत् मेरा गृह है और उसी विश्वपिताके समान सम्पूर्ण होकर रहना मेरा भविष्यत् भाग्य है। मुझको अपनी सन्तानोंसे वार्तालाप करनेकी इच्छा होती है, कदाचित् वे मेरी इस अवस्थाको देखकर अपना विश्वास परिवर्तन कर सकें।

प्रश्न—तुमको अपनी यह मृत देह देखकर मनमें कैसा भाव होता है ?

उत्तर—अहा ! शरीर तो मृत्तिका ही हो जायगा, किन्तु इसके द्वारा मैं आप लोगोंसे परिचित था। मेरे आत्माके वासस्थान इस शरीरने मेरे आत्माको पवित्र करनेकेलिये कितने दिनों पर्यन्त कैसा कैसा कष्ट सहा है ! देह ! तुम्हारी ही कृपासे मुझे आज यह सुख मिल रहा है।

प्रश्न—आपको क्या मरनेके समयतक ज्ञान था ? तब आपके मनका भाव कैसा था ?

उत्तर—हाँ था, उस समय मैं चर्म्मचक्षुके द्वारा नहीं देख सकता था, परन्तु ज्ञानचक्षुके द्वारा सब कुछ देखता था। पृथवीके सब काम मनमें

उदय होने लगे। ठीक शरीरसे पृथक् होते समय आत्मा दृष्टिहीन हो गया, पुनः अनुभव होने लगा कि, किसी अनजान शून्याकार आकारको धारण करके मैं चल रहा हूँ, पुनः थोड़ी देरमें एक अद्भुत आनन्दमय स्थानमें पहुँच गया, वहाँ सब दुःख भूल गया और तब मैं एक अपार आनन्दसागरमें मग्न होने लगा।

प्रश्न—आप क्या जानते हैं—(सम्पूर्ण बात मुखसे बाहर भी नहीं हुई थी कि, उत्तर लिखा जाना आरम्भ हो गया।)

उत्तर—जो लिखते हो सो अवश्य ही होगा। श्मशान भूमि और मृतकशरीर देखकर लोगोंको परलोककी स्मृति और नास्तिकोंके मनमें भय उत्पन्न हुआ करता है। इसलिये धर्म्मसम्बन्धमें मेरी जो कुछ सम्मति है, उसे सब लोगोंपर विदित कर दो; क्योंकि इससे बहुतसा उपकार मनुष्य समाजको पहुँचेगा।

पुनः जब मृतकशरीर पृथिवीके नीचे रक्खा जाने लगा, तब चक्रमें लिखा कि—"हे भाइयों! मृत्युसे भय कदापि मत करो। पृथिवीके सब दुःखोंमें धैर्य्य अवलम्बन पूर्व्वक सत्यपथमें सब समय विचरण करनेका यत्न करो, तब असीम सुखको अपने सामने देखोगे। हे बन्धुगण! सदा सत्यके प्रचारमें प्रवृत्त रहो। इस विषयको सदा मनमें रखना उचित है कि, पृथिवीमें वे ही लोग सुखसे चारोंओर वेष्टित हो सकते हैं जो और लोगोंका सुखसे वञ्चित न करते हों। इस कारण यदि सच्चे सुख और पूर्ण सुखको पानेकी इच्छा हो तो दूसरोंको सुखी करो"। तत्पश्चात् उस दिन पेरिस नगरीकी उस सभाने अपना कार्य्य बन्द किया और पुनः उसी सन्की और उसी महीनेकी पच्चीसवीं तारीखको पुनः अपनी सभाका अधिवेशन किया और तब चक्रमें पुनः उन्हीं साहबकी आत्माके आनेपर प्रश्न और उत्तर होने लगा।

प्रश्न—मरनेके समय क्या बड़ा कष्ट होता है?

उत्तर—जरूर कष्ट होता है। पृथिवीमें रहनेका समय केवल दुःखका समय है और मृत्यु उसी दुःखकी पूर्णाहुति है। आत्मा शरीरसे अलग होनेके पहिले सम्पूर्ण देहसे तेज खींच लेता है, इसीको सब लोग मरनेका कष्ट कहते हैं, इस खिचावमें आत्मा अचेत हो जाता है।

प्रश्न—अच्छा, शरीरसे अलग होनेके कुछ पहिले आपकी आत्मा सूक्ष्म भूमिको देख सकी थी?

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर पहिले ही दे चुका हूँ। मैंने वहाँ पहुँचकर अपने आत्मीय सम्बन्धियोंको देखा। उन लोगोंने बड़े आनन्दके साथ मेरा स्वागत किया। शरीरके नीरोग और बलवान् हो जानेसे आनन्दके साथ शून्य स्थानमें मैं चलने लगा। पथमें मैंने जिन जिन पदार्थोंको देखा उनकी आश्चर्य्यसुन्दरताके वर्णन करनेके योग्य संसारमें शब्द ही नहीं है, केवल यही समझ लेना उचित है कि, तुम लोग पृथिवीमें जिन पदार्थोंको सुख कहा करते हो, वह केवल उपन्यास मात्र है। तुम लोगोंके बड़े बड़े कवियोंकी कल्पना भी वहांके सुखके एक छोटेसे छोटे अंशका भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं हो सकती।

प्रश्न—परलोकगामी सब आत्मा देखनेमें कैसे होते हैं? उन लोगोंके भी क्या मनुष्यकी नाईं हाथ पाव आंख मुंह आदि हुआ करते हैं?

उत्तर—हां वैसे ही होते हैं, वे भी ठीक मनुष्यकी नांई आकार-विशिष्ट हुआ करते हैं। केवल भेद इतना ही है कि मनुष्योंका शरीर बहुत मोटा और भद्दा हुआ करता है तथा बुढापेसे अथवा शोक और दुःखसे जीर्ण हो जाता है; परन्तु परलोकगामी आत्माओंका शरीर बहुत सूक्ष्म और अतिसुन्दर होता है। वे अति अल्पचेष्टासे ही चल फिर सकते हैं और जरा आदिसे उनके शरीरमें कोई भी विघ्न नहीं पड़ता। (शास्त्रका प्रमाण है कि स्वर्गके जीवोंकी उम्र १६ से ३० तक

होती है, इस कारण देवताओंका नाम त्रिदश है) हम लोग अपनी इच्छाके अनुसार जहां चाहें वहीं रह सकते हैं, यह देखो इस समय मैं तुम्हारे पास हो हूं और तुम्हारे हाथपर हाथ रक्खे हूं, परन्तु तो भी तुम कुछ भी अनुभव करनेको समर्थ नहीं हो। हम लोगोंकी आंखें सब द्रव्योंके भीतर और बाहरके सब पदार्थोंको देख सकती हैं।

प्रश्न—आप लोग किसीके मनकी बात कैसे जान सकते हैं ?

उत्तर—यह कारण तुम लोग शीघ्र नहीं समझ सकोगे। धैर्य्य धारण करके संसारमें धर्म करो, तब सब कुछ आपही आप समझ जाओगे। तुम लोगोंके मनकी चिंता चारों ओरके आकाशमें अङ्कित हो जाती है और उन्हीं चिन्ताओंको परलोकगामी आत्मागण पढ़ सकते हैं। (यह शास्त्रोक्त चिदाकाशका विषय है)

ऊपर लिखित विवरण हमारे पितृलोकगामी आत्माओंके सब विवरणोंके साथ मिलता है। उक्त साहबकी आत्मा पितृलोकमें पहुंचकर सन्देशा कह रही थी। हमारे शास्त्रोक्त सूक्ष्मलोकोंके वर्णन जिन्होंने पाठ किये हैं, उनको ऐसे वर्णनके पाठ करनेसे कोई भी सन्देह नहीं होगा। पितृलोक हमारे इस मृत्युलोकसे सम्बन्धयुक्त साक्षात् सुखमय लोक है। प्रेतलोक अलग है और दुखदायी नरलोक अलग है। नरकलोकमें शरीर युवा नहीं रहता, वहाँ जीवको भोगमें असमर्थ वृद्ध शरीर मिलता है, ऐसा वर्णन आर्यशास्त्रमें पाया जाता है। इस स्पारीच्युएलीज्म विद्यासे हमारे शास्त्रोक्त सूक्ष्मलोकोंका प्रमाण अब पाश्चात्य जगत्‌का मिलने लगा है।

इस प्रकारसे स्पीरीच्युअलीज्म सभामें चक्रद्वारा परलोकगामी आत्माओंसे कथोपकथन करके यूरप और अमेरिकाके अनेक विद्वान् सूक्ष्मजगत्‌के अनेक सम्बाद विदित होकर पुस्तकाकारमें प्रकाशित कर चुके हैं और बहुतसो परलोकगामो आत्माओंने इस विषयका अनुरोध

भी किया है कि, संसारमें सूक्ष्मजगत्‌का गूढ़रहस्य क्रमशः प्रचारित होना उचित हैं, क्योंकि आजकलके विद्वान् परलोकविषयक ज्ञानमें बालकवत् हैं इस शास्त्रमें प्रथम बहुत पुरुषोंको अविश्वास हुआ करता था; परन्तु सत्य सत्यही है, क्रमशः अनेक विद्वान् इस विद्याकी सत्यता अनुभव करके सूक्ष्म जगत्‌के संवादोंके खोजकरनेमें प्रवृत्त हुए थे और अब भी हो रहे हैं।

उस दिन सर ऑलिभर लाज नामक इंगलेंण्डके सायन्सके प्रसिद्ध विद्वान् पूर्वमें एकबार ही नास्तिक रहते हुए भी सूक्ष्मजगत्‌पर विश्वास करके कई ग्रन्थ लिख गये हैं। यूरोपके वे असाधारण सायन्स वेत्ताओंमेंसे थे। कई बार सायन्स महासभाके सभापति हुए थे। अन्यान्य सायन्सवालोंकी तरह वे नास्तिक और परलोकपर अविश्वासी थे। यूरोपके महायुद्धमें उनका पुत्र रेमण्ड (Reymond) मारा गया था। पुत्रकी आत्मा पितृलोकमें पहुंची और तत्पश्चात् वह अपने पितामातासे मिली। मिलकर उन लोगोंको अनेक संदेशे कहे। इस घटनाके बादसे सर ऑलिभर लाज परम आस्तिक और परलोक पर विश्वास करनेवाले बन गये थे। उनकी बनायी हुई पुस्तकें इसका प्रमाण देती हैं।

प्रेतलोककी घटनाके प्रमाण तो इस स्पिरिच्युएलिज्मकी अनेक पुस्तकोंमें पाये जाते हैं। अध्याय बढ़ जानेके भयसे उन सब घटनावलियोंका प्रमाण इस स्थलपर नहीं दिया गया। ग्रन्थान्तरमें इन विषयोंका विस्तारित विवरण प्रकाशित किया जायगा।

सूक्ष्म जगत्‌के विषयमें अनुसन्धित्सु अमेरिकादेशवासी जौन डब्लू एडमण्ड्स (John. W. Edmonds) साहब नामसे एक प्रतिष्ठित पुरुष थे, वे वहाँकी अदालतके एक बड़े और नामी जज्ज थे और जिनके वाक्य पर समस्त अमेरिकावासियोंका विश्वास है। ये साहब पहले पाश्चात्य ज्ञानशैलीके अनुसार इन विषयोंको कुछ भी नहीं मानते थे, परन्तु सत्य

अनुसंधान करनेमें वे दृढ़व्रत थे, इस कारण न माननेपर भी क्रमशः सत्य घटनाओंको देखते २ उनका विश्वास परलोकविषयक स्पीरीच्युअलीज्म शास्त्रपर जम गया और शेषमें वे इस शास्त्रके एक प्रधान आचार्य्य बन गये। उन्होंने अपने पूर्व अन्धविश्वास और पश्चात्के ज्ञान पूर्ण अनुसंधानोंका विस्तारसे विवरण सन् १८५३ ईस्वीमें छपी हुई "स्पीरीच्यु-अलीज्म" नामक पुस्तकमें लिखा है। उस पुस्तकमें बहुत ही विषय हैं; परन्तु हमारे नवीन शिक्षित भारतवासियोंको परलोकसम्बन्धीय विचारमें दृढ़ करनेकेलिये जितने प्रमाणोंकी आवश्यकता है, केवल उतने शब्दों ही का यहाँ अनुवाद किया जाता है। साहवने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि "जब मेरा विश्वास इस विद्या पर हो गया और मैं अपने ही ज्ञान द्वारा अनुसंधान करने लगा, तो मुझे इन निम्नलिखित सात विषयों पर दृढ़ विश्वास करना पड़ा।

(१) इस पृथ्वीपर आयु समाप्त करनेके अनन्तर मनुष्यके आत्माकी स्थिति रहती है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। बहुतसे सच्चे धार्मिक मनुष्योंको इस पारलौकिक विषयमें खोज करते देखा; परन्तु अवशेषमें उनको मेरे इसी सिद्धान्त पर स्थिर होते देखा गया है।

(२) जिन लोगोंको हम पृथ्वीपर प्यार करते हैं, उन लोगोंसे हम लोगोंका वियोग मृत्युके द्वारा नहीं हो सकता। हमारे प्रियजन परलोक गमनके अनन्तर हम लोगोंके साथ सूक्ष्म शरीरमें रहकर हमारी रक्षा कर सकते हैं। तत्पश्चात् यदि हम लोग धर्मपथपर चलें, तो हमारे परलोक गमन होने पर उनसे मिलना हो सकता है अथवा कदाचित् यहीं मिलना हो सकता है। यदि केवल मैं ही मेरे प्रियजनोंसे मिलता तो ऐसी बात नहीं लिख सकता किन्तु जितने लोग हमारे साथ चक्रमें बैठा करते थे प्रायः वे सब ही अपने प्रियजनोंसे मिले हैं, इस कारण हमारा यह विश्वास अकाट्य है।

(३) यह भी सिद्ध हो चुका है कि, हम लोगोंके मनके बहुत गुप्त सम्वाद परलोकगामी आत्माओंको विदित हो सकते हैं और उनको वे प्रकाशित भी कर सकते हैं, इसका प्रमाण इस शास्त्रके अभ्यासकर्त्ता मात्रको ही अवश्य ही मिला करता है।

(४) परलोकगामी आत्माओंमें अवस्था भेद है और परलोकमें भी निकृष्टता और उत्कृष्टता है। अपने कर्म्मोंके अनुसार परलोकगामी जीवगण उत्कृष्ट और निकृष्ट दशाको प्राप्त हुआ करते हैं।

(५) यह बात सिद्ध ही है कि हम जैसा कर्म्म करेंगे, ठीक वैसा ही फल हम लोगोंको परलोकमें मिलेगा। हमारे परजन्ममें सुख और दुःखकी प्राप्ति हमारे हाथ ही है, इस कारण हम लोगोंको सदा सत्कर्म्म-अनुष्ठान करना उचित है और भविष्यत्केलिये ईश्वरकृपा और अपने कर्म्मोंपर निर्भर करना उचित है।

(६) मुझको यह भी इस शास्त्रकी चर्चासे प्रमाण मिला है कि मनुष्यकी क्रमोन्नतिका पथ इस एक जन्मके साथ नष्ट नहीं हो जाता, जन्मान्तरमें जीव क्रमशः अपनी आत्मोन्नति कर सकता है और शेषमें यदि ठीक पथपर चला हो, तो वह जहाँसे निकला है, वहीं पहुँचकर आनन्दकी पराकाष्ठाको प्राप्त हो जायगा।

(७) अन्तिम बात मैंने यह सीखी है कि, मृत्युके अनन्तर मनुष्य किसी न किसी योनिको अवश्य प्राप्त हो जाता है और तब उसके मनका अपने पूर्व साथियोंसे संस्कारके अनुसार कुछ सम्बन्ध भी रहा करता है।

इन सातों बातोंपर मेरा दृढ़ और अभ्रान्त विश्वास हो गया है और मुझे विश्वास है कि, सच्चे उद्योगसे जो मनुष्य इस शास्त्रको अध्ययन करेंगे, वे भी इसका भली भाँति प्रमाण पावेंगे"।

आर्यशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, भूलोकसे सम्बन्ध रखने वाले जो चार लोक हैं, यथा-मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक उन्हीं चारोंमें साधारण जीव आया जाया करते हैं। मूर्छावस्थामें मृत्यु होनेपर प्रेतलोक प्राप्त होता है, वह लोक भी दुःखदायी है। नरकलोक तो दुःख और सजाका स्वरूप ही है। पितृलोक सुख-मय लोक है। वह हमारे लोकका साक्षात् स्वर्ग लोक है और यह मृत्युलोक तो प्रत्यक्ष ही है। जो जीव आसुरी प्रकृतिके होते हैं और शक्ति चाहते हैं, वे नीचेके सात असुर लोकोंमें चले जाते हैं। जो अधिक पुण्यात्मा होते हैं, वे ऊपरके ६ लोकोंमें जाते हैं। इन लोकोंमें भी अनेक अन्तर्विभाग हैं; अर्थात् एक एक लोकके भीतर अनेकानेक लोक हैं, यथा-भूवः और स्वर्लोकके अन्तर्गत किन्नर लोक, गन्धर्व लोक आदि अनेक लोक हैं। ऊपरके लोकवाले नीचेके लोक-वालोंका हाल जान सकते हैं; किन्तु नीचेके लोकवाले ऊपरके लोकोंका हाल नहीं जान सकते। असुरोंका राजा नीचेके सातवें लोक अर्थात् पाताल लोकमें रहता है, क्योंकि सातों असुर लोकोंमें राजानुशासनकी आवश्यकता सदा रहती है। असुर एक श्रेणीके देवता होनेपर भी असुर असुर ही होते हैं; परन्तु ऊपरके लोकोंमेंसे तीसरे लोकमें अर्थात् स्वर्लोकमें देवराज इन्द्रकी राजधानी है। उसके ऊपरके चार लोकोंमें राजानु-शासनकी आवश्यकता नहीं रहती। पृथिवीमें भी देखा जाता है कि, उन्नत मनुष्यसमाजमें राजानुशासनकी कोई भी आवश्यकता नहीं होती। सबसे ऊपरके दोनोंलोक अर्थात् तपोलोक और सत्यलोक तो बहुत ही उन्नत हैं। वहाँ जानेपर तो मुक्त होनेका मौका मिल जाता है। उनमें उच्च श्रेणीके उपासक और सिद्ध महात्मागण वास करते हैं। यद्यपि पश्चिमी विद्वानोंने अभीतक परलोकका इसप्रकारका विस्तृतज्ञान नहीं लाभ किया है, परन्तु इस प्रकारके परलोक ज्ञानका आभास उनको मिलने लगा है और अन्यान्य धर्मोंमें जो यह कहा जाता है कि, जीवका पुनर्जन्म

नहीं होता है और सब जीव मरकर एक जगहके खजानेमें जमा रहते हैं और कयामतके दिन सबका एकही दिनमें विचार होता है इत्यादि, इन सब बातोंको अब स्पिरिचूएलिज्मके विद्वानोंने प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा उलट डाला है।

उक्त साहबके उस पुस्तकमें लिखा है कि, तारीख ८ अप्रैल सन् १८५३ ईस्वीमें एक चक्र बैठाया गया, जिसमें वहाँके बड़े २ प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। चक्र बैठनेके थोड़ी देर पीछे अनुभव हुआ कि चक्रमें कोई आत्मा आया है, जिज्ञासा करनेके अनन्तर लेखद्वारा उत्तर दिया जाने लगा कि "मेरा नाम बेकन है" (यह बेकन साहब विलायतके एक बड़े भारी राजनैतिक और दार्शनिक विद्वान् थे।) पुनः लिखा गया कि "परलोकके विषयमें पूर्णज्ञान बहुत कम लोगोंको है और उस विषयमें जितनी बातें प्रकट हुई हैं, वे सब पूर्णरूपसे सच्ची नहीं हैं; क्योंकि परलोकगामी आत्मा जिस लोकमें स्वयं रहते हैं, उसके बाहरकी बात कुछ नहीं जान सकते हैं। मनुष्यका देहपात होनेके अनन्तर वह उसी लोकमें जा सकता है, जिस लोकमें जानेका वह अधिकारी हुआ करता है। मनुष्यकी इस लोकमें जितनी ज्ञानकी उन्नति हुई है, उसमें जैसे अभ्यासोंकी दृढ़ता हुई है, उसीप्रकारकी शक्ति उसमें रहनेके कारण उसको देहपातके अनन्तर तदनुरूप लोककी प्राप्ति हुआ करती है। यदिच ईश्वर सर्वव्यापक हैं, तत्रच उनकी महिमा क्रमशः उत्कृष्ट लोकोंमें अधिक प्रकाशको प्राप्त हुई है; इस कारण जीव जितना अधिक धार्म्मिक होता है, उतना ही वह उच्चतर लोकोंमें पहुंचकर ईश्वरके निकटवर्ती हो सकता है। अच्छा और पवित्र आत्मा पृथिवीसे बहुत ही दूरवर्ती लोकोंमें रहा करता है; परन्तु जो आत्मा जिस लोकमें जाता है वह उसी लोककी उपयोगी हो जाता है। उन्नत लोकका आत्मा अधोलोकका सम्वाद कदाचित् जान सके परन्तु अधोलोकका आत्मा उन्नत लोकका सम्वाद नहीं जान सकेगा।"

प्रश्न—परलोकगामी आत्माओंका स्थान निश्चय होते समय उनके स्वभावके साथ स्थानके स्वभावका कुछ विचार रक्खा जाता है या नहीं ?

उत्तर—अवश्य इसका विचार रक्खा जाता है। जैसे आत्माओंका जन्म इस पृथिवीपर हुआ करता है, वैसे ही अन्य लोकोंमें भी हुआ करता है और जहांकेलिये उपयोगी जो आत्मा होते हैं, केवल उसी लोकमें ही वे जा सकते हैं।

प्रश्न—जो मनुष्य इसप्रकारसे हमारी पृथिवीसे मरकर अन्य लोकोंमें चले जाते हैं, वे क्या वहां जाकर यहाँके जीवधारियोंके समान जन्म लिया करते हैं, यहांकीसी शैली क्या वहां भी है ?

उत्तर—जब कोई उन्नत आत्मा यहाँ मृत्युको प्राप्त हो जाता है, तो वह अपनी उन्नतिकेअनुसार क्रमशः फिरता हुआ अपने ही उपयोगी लोकको पहुंच जाता है। सूक्ष्म शरीरको एक लोकसे दूसरे लोकमें पहुँचते हुए कुछ विलम्ब नहीं लगता। जब वह आत्मा अपने निवास उपयोगी स्थानमें पहुँच जाता है, तब वह वहाँके निवासियोंकेसे देहको प्राप्तकर लेता है। नाना लोकोंकी नाना अवस्थाओंकेअनुसार नाना प्रकारके देह हुआ करते हैं। बहुतसे लोकोंके जीवोंके देह मनुष्यके शरीरसे भी बुरे हुआ करते हैं, किन्तु उन्नत लोकके जीवोंके देह क्रमशः उन्नत ही होते हैं। मुझे अब लिखनेका समय नहीं है, इन्हीं सब बातोंका ध्यान करके समझनेसे क्रमशः आप लोग परलोकको अच्छी तरह समझने लगोगे। दस्तखत—बेकन"

तदनन्तर तारीख चौबीसवीं मईको सभाका पुनः अधिवेशन हुआ, उस दिन आत्माओंकी आवाहनक्रिया करनेके अनन्तर पुनः लार्ड बेकन साहबका आत्मा आया, पुनः प्रश्नोत्तरद्वारा आध्यात्मिक अनुसंधान-कार्य चलने लगा।

प्रश्न—आपने कहा था कि, आत्मागण जिस लोकमें रहते हैं उस लोकके बाहरका हाल नहीं जान सकते, इस अवस्थाको और भी जरा प्रकाशित करके वर्णन करिये।

उत्तर—पृथिवीसे जो उच्च लोग हैं, उनमें यह शैली है कि, वहां उन्नत लोकोंके जीव निम्नलोकका संवाद जान सकते हैं परन्तु उन्नत लोकोंके संवाद कुछ भी नहीं जान सकते; परन्तु उन उन्नत लोकोंमें ऐसे भी धार्मिक परलोकगामी आत्मा हुआ करते हैं, जो क्रमशः उन्नत होकर ईश्वरके निकटवर्ती अर्थात् बहुत ही उन्नत लोकको चले जानेके योग्य हो जाते हैं; परन्तु ऐसा प्रारब्ध बहुत कम हुआ करता है। पृथिवीके निम्न लोकोंकी अवस्था इससे विपरीत है क्योंकि वे सब लोक निकृष्ट हैं।

प्रश्न—ऐसे मूर्ख जीव भी क्या स्वर्गमें हैं, जो अपने ऊपरके लोकोंको न जाननेके कारण और कोई उन्नत लोक हो सकते हैं, ऐसा नहीं मानते; अर्थात् अपनेको ही क्या वे सबसे उन्नत समझते हैं ?

उत्तर—हां, स्वर्गमें ऐसे भी जीव हैं, जो अपनेको सबसे बढ़ कर मानते हैं और अपने लोकसे कोई उन्नत लोक है, ऐसा स्वीकार नहीं करते। वे सब बुरे आत्मा नहीं हैं परन्तु उनके अहंकारसे ही उनमें यह अज्ञान रह गया है। यह पूर्व्व संस्कारका ही कार्य्य है क्योंकि पृथिवी-पर भी भले बुरे लोग हैं।

प्रश्न—क्या ऊँचे लोकोंके आत्मा भी यहाँ लौटकर आ सकते हैं एवं नीचेके लोकोंके आत्मा भी यहाँ आते हैं ?

उत्तर—हां ऊपरके लोकोंके आत्मा अवनतिके कारण और नीचे-के लोंकोंके आत्मा उन्नतिके कारण कदापि पृथिवीमें आसकें।

प्रश्न—इस संसारमें देखते हैं कि, अच्छे जीवोंका सङ्ग बुरे जीवोंसे

होता है। इस कारण अच्छे जीवोंको उन्नतिका अवसर नहीं मिलता, इस प्रकार क्या परलोकमें भी हुआ करता हैं ?

उत्तर—नहीं यह बात कदापि नहीं हो सकती। यह ईश्वरके नियमके विरुद्ध है, ऐसा अविचार न पृथिवी पर है और न अन्य लोकमें हो सकता है; क्योंकि आत्मा कभी ऐसे स्थानोंमें नहीं रखे जा सकते, जहां उनकी उन्नति करनेका अवसर उनको न मिलता हो। ईश्वरको दया सब जीवोंपर समान है, इस कारण सब लोकोंमें जीवोंको उन्नति करनेका अवसर समान मिलता है। भेद इतना ही है कि, कर्म्म साधनमें पृथिवीकी कुछ विलक्षणता है।

प्रश्न—परलोकगामी आत्मा क्या अपने पूर्व सम्बन्धको भूल जाते हैं अथवा पूर्व सम्बन्धियोंसे मनमें सम्बन्ध रखते हैं ?

उत्तर—जीवोंके आध्यात्मिक ज्ञानकेअनुसार उनमें इसप्रकारका सम्बन्ध कम अथवा अधिक रह जाता है। परलोकगामी आत्मागण मनमें पूर्वस्मृति रखते हुए देख पड़ते हैं और अपने पुत्र कलत्र मित्रकी सत् असत् अवस्था तथा कर्म्मसे सुख अथवा दुःख अनुभव किया करते हैं, परन्तु यह अवस्था सबमें एकसी नहीं होती"।

इस प्रकार बहुतसे आध्यात्मिक विज्ञानोंके संवाद जज साहबने अपने स्पीरीच्युअलीज्म नामक पुस्तकमें प्रकाशित करके परलोक विज्ञानोंको दृढ़ कर दिखाया है और ग्रह उपग्रहोंकी अनन्तताके विषयमें प्रोफेसर बेली (Professor Bailly) साहबने अनुमान प्रमाणद्वारा सिद्ध कर दिखाया है कि "जिस प्रकार हमारो पृथिवी अपने उपग्रह सहित सूर्य्यके चारों ओर भ्रमण करती है, उसीप्रकार हमारे सूर्य भी अपने सब ग्रहोंके सहित ध्रुव नामक बृहत् सूर्य्यके चारोंओर भ्रमण किया करते हैं। इस कारण उनको बृहत् सूर्य्य कह सकते हैं। इसी प्रकार अनन्तबृहत् सूर्य अपने अधीनस्थ सूर्य तथा अनन्त ग्रह और उपग्रहों

सहित एक विराट् सूर्यके चारोंओर भ्रमण कर रहे हैं और उसी प्रकार अनन्त विराट् सूर्य एक महासूर्यके चारों और भ्रमण करते हैं; इस प्रकार ग्रह, उपग्रह, सूर्य, महासूर्य और विराट् सूर्य आदिका अन्त नहीं है।" ऊपरोक्त पश्चिमी विद्वानोंके प्रमाणवाक्यद्वारा पूज्यपाद महर्षिगणका परलोकसम्बन्धीय विचार पूर्णरूपसे सिद्ध होता है। जिस विषयको नवीन शिक्षित युवकगण महर्षियोंकी कपोलकल्पना करके मानते थे, उन युवकोंके पश्चिमी गुरुगण अब उन्हीं सिद्धान्तोंको अपनी वैज्ञानिक बुद्धिद्वारा अन्वेषण करते जाते हैं। फलतः परलोकसम्बन्धमें पूज्यपाद महर्षिगण पूर्व ही जो सिद्धान्त वाक्य प्रकाशित कर गये हैं, वे सब आज दिन पाश्चात्य विज्ञानद्वारा यथावत् सिद्ध हो चुके और हो रहे हैं। जीव शरीरका स्थूल और सूक्ष्म आदि भागमें विभक्त होना, स्वर्ग और नरक आदि लोकोंका सम्भव होना, ब्रह्माण्डोंकी अनन्तताका सम्भव होना, ज्ञानप्रवाहमें जीवका कर्म्मद्वारा क्रमोन्नति करना, जीवित और मृत जीवोंमें परस्पर सम्बन्ध रहना, जीवित मनुष्योंके किये हुए कर्म्मोंद्वारा मृत परलोकगामी आत्माको सुख पहुँचना, श्राद्ध आदिद्वारा मृतजीवका उपकार सम्भव होना, मृत्युके अनन्तर प्रायः मूर्च्छा होनेके कारण प्रेतत्व प्राप्तिकी संभावना रहना, मुक्तिके पहलेतक जन्मान्तर होते रहना इत्यादि सब आध्यात्मिकतत्त्व उपरोक्त अनुसंधानद्वारा सिद्ध हो चुके हैं। इसी प्रकार जितना विचार किया जाता है, उतना ही नाना विषयोंमें पूज्यपाद महर्षियोंकी अभ्रान्त बुद्धि और नाना अद्भुत बुद्धि और नाना अद्भुत आविष्कारोंका परिचय मिला है और मिल सकता है। विद्वान्गण आर्य्य शास्त्रोंको निरपेक्ष बुद्धि द्वारा जितना पाठ करेंगे उतना ही इस विषयका परिचय वे स्वतः ही प्राप्त करते जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है।

—:०:—

सनातनधर्मका महत्त्व ।

जीवकी श्रेष्ठताका प्रमाण बुद्धि है। बुद्धिकी श्रेष्ठताका प्रमाण ज्ञानाधिक्य है और ज्ञानकी श्रेष्ठताका प्रमाण धर्मज्ञानकी पूर्णता है। भारतवर्ष ही पृथिवीभरमें धर्म्मभूमि है। भारतमातासे ही और सब बालकोंने धर्म्मज्ञानकी शिक्षा पायी है। धर्म्मजगत्‌में भारतवर्ष ही आदिगुरु है। आर्य्यजातिके प्रीचीनत्वमें तो किसीको संदेह ही नहीं रहा; पुनः आर्य्यग्रन्थोंसे और नाना बौद्ध ग्रन्थोंसे यह प्रमाण मिलता है कि, आर्य्यधर्म्मसे ही बौद्ध धर्म्मकी सृष्टि हुई है; सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुगके प्रायः तीन सहस्रवर्ष बीतने तक एक मात्र अभ्रान्त सनातन आर्य्यधर्म्म ही पृथिवीको पूर्णरूपसे प्रकाशित करता रहा; तत्पश्चात् ढाई सहस्र वर्षके लगभग बीते होंगे कि, इसी भारतभूमिमें श्रीभगवान् बुद्धदेवने प्रकट होकर बौद्ध धर्म्मके प्रचारद्वारा नवयुगकी सृष्टिकी और क्रमशः वह नवधर्म्म समस्त संसारमें फैल गया। अब भी बौद्ध धर्म्म और और धर्म्मोंसे अधिक मनुष्योंमें चलित है, अब भी एक तृतीयांशसे अधिक मनुष्यजाति इस धर्म्मको मानती है; परन्तु यह भी प्रमाणित ही है कि, किसी कालमें यह धर्म्म समस्त पृथिवीपर व्याप्त हो गया था। यदिच अन्य समस्त संसार एक समय बौद्धधर्म्मावलम्बी हो गया था, तत्रच उस समय भी भारतवर्ष अभ्रान्त आर्य्यधर्म्मज्ञानसे शून्य न था, बहुत धार्म्मिकगण तब भी प्रधानरूपसे इस पवित्र भूमिमें उपस्थित थे, जिनकेद्वारा ही पुनः इस धर्म्मका उद्धार हुआ। बौद्धधर्मसे नीचे अब ईसाई धर्म्मका विस्तार समझा जाता है, परन्तु बौद्ध ग्रन्थोंमें यह स्पष्ट प्रमाण है कि, ईसाई धर्म्मप्रचारक महात्मा ईसाने प्रथम अवस्थामें इस भारत वर्षमें आकर यहाँके ब्राह्मण और बौद्ध आचार्य्योंके निकट विद्याभ्यास

किया था और तत्पश्चात् बौद्धोंके निकट बौद्ध धर्म्ममें दीक्षित हो पुनः स्वदेशमें जा कर अपने उस नव धर्म्मकी सृष्टि की थी। केवल बौद्ध धर्म्मकी पुस्तकें ही इस विचारके प्रमाण नहीं हैं किन्तु आर्य्यावर्त्तसे ईसाका सम्बन्ध हुआ था, ऐसा प्रमाण सनातनधर्म्मकी पुस्तकोंमें भी मिलता है और यूरोपकी प्रसिद्ध पंडिता मेडम ब्लेव्हस्की (Madam H P. Blavatsky) ने अपने ग्रन्थोंमें नाना युक्तिद्वारा सिद्ध किया है कि, ईसाई धर्म्म बौद्धधर्म्मका शिष्य है। ईसाई धर्म्मके नीचे आज दिन मुसलमान धर्म्म समझा जाता है; वह ईसाई धर्म्मका शिष्य है, इसमें तो सन्देह ही नहीं। मुसलमान धर्म्मप्रचारक महात्मा मुहम्मद अपने आप ही स्वीकार कर गये हैं कि, ईसामसीह उनसे पूर्ववर्ती पैगम्बर हैं और उन्होंने ईसाका सन्मान भी किया है, दूसरा प्रबल प्रमाण यह है कि, यह दोनों धर्म्म एक ही भूमिमें प्रकट हुए, जिनमेंसे ईसाई धर्म्म प्रथम प्रकट हुआ और उसके ५०० वर्षके उपरान्त मुसलमान धर्म्मने जन्म लिया था। इन परंपरा सम्बन्धोंसे भी यह प्रमाणित हुआ कि, सनातन आर्य्य धर्म्म ही धर्म्म जगत्में आदि गुरु है, इससे ही शिक्षा पाकर अन्य नाना धर्म्मोंने होश सम्हाला था। सनातनधर्म्मकी श्रेष्ठताके तीन प्रबल प्रमाण हैं; प्रथम तो यह अपौरुषेय धर्म्म कबसे आरम्भ हुआ अथवा कितने दिनसे चला आता है, इसका परिज्ञान संसार भरमें किसीको भी नहीं है, द्वितीय प्रमाण यह है कि और और धर्म्मावलम्बी परधर्म्मकी निन्दामें प्रवृत्त होकर उन परधर्म्मावलम्बियोंको स्वधर्म्म परित्यागका उपदेश दे कर अपने धर्म्ममें लानेका यत्न करते हैं, परन्तु सनातनधर्म्ममें इस भ्रमपूर्ण अभ्यासका सम्बन्धमात्र नहीं है, तृतीय प्रमाण यह है कि अन्य धर्म्मोंमें सब श्रेणीके मनुष्योंकेलिये एक प्रकारका धर्म्मसाधन विहित है, चाहे वह परम बुद्धिमान् हो, चाहे जड़ मूर्ख, चाहे जितेन्द्रिय हो, चाहे भोगलोलुप, चाहे गृहस्थ हो, चाहे संन्यासी, चाहे दरिद्र हो, चाहे परम ऐश्वर्य्यवान्, चाहे विकलांग रोगी हो, चाहे

१०

पूर्ण प्रकृतिवान्, उन सबोंकेलिये ही अन्य धर्म्ममें एक ही प्रकारका साधन विहित है, परन्तु सनातनधर्म्ममें वह असम्पूर्णता नहीं देख पड़ती। इस अपौरुषेय धर्म्ममें अधिकार भेदके कारण साधन भेद इतना विशेष है कि, जिससे सब श्रेणीके मनुष्य ही अपनी अपनी योग्यताके अनुसार अपना अपना कल्याण साधन भली भाँति कर सकते हैं। सनातनधर्म्मकी मूर्त्तिपूजा, विचारसम्बन्धीय आत्मस्वरूप निर्णयकारी ब्रह्मसद्भाव, सनातनधर्म्मका द्वैत और अद्वैत विज्ञान, सनातनधर्म्मके योगदर्शन, सांख्यदर्शन, न्यायदर्शन, वैशेषिकदर्शन, कर्ममीमांसादर्शन, दैवीमीमांसादर्शन और वेदान्तदर्शन, सनातनधर्म्मके मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग—ये चार साधन मार्ग और सनातनधर्म्मशास्त्रोक्त सदाचार ही इस अभ्रान्त धर्म्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन कर रहे हैं।

पूज्यपाद महर्षियोंने धर्मको चार भागोंमें विभक्त किया है, यथा—साधारणधर्म, विशेषधर्म, असाधारणधर्म और आपद्धधर्म। साधारणधर्मके उन्होंने ७२ भेद किये हैं। साधारण धर्म प्रथमतः तीन भागमें विभक्त हैं, यथा-दान, तप और यज्ञ। दानके तीन भेद हैं, यथा-अर्थदान, जैसे कि भूमिदान, वस्त्रदान, धनदान इत्यादि। दूसरा ब्रह्मदान अर्थात्। विद्यादान, तीसरा अभयदान अर्थात् दीक्षादान। तपके भी तीन भेद हैं, यथा-शरीरका तप, वाचनिक तप और मनका तप। यज्ञके अठारह भेद हैं। कर्मयज्ञके नित्य, नैमित्तिक, काम्य, अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत ये छः भेद हैं। उपासनाके नौ भेद हैं, यथा निर्गुण ब्रह्मोपासना, सगुण ब्रह्मोपासना, अवतारोपासना, ऋषि, देवता, पितृ उपासना और भूत प्रेत असुरादिकी उपासना तथा मन्त्र, हठ, लय, राज, इन चार योगोंकी चार उपासना। इसी प्रकार ज्ञान यज्ञके भी तीन भेद हैं, यथा—श्रवण, मनन और निदिध्यासन। अस्तु, तीन प्रकारके तप और अठारह प्रकारके यज्ञ

मिलकर चौबीस भेद हुए। इन चौबीसको सात्त्विक, राजसिक, तामसिक, त्रिगुणानुसार विभक्त करनेसे ७२ होते हैं। इन ७२ भेदोंसे मिलने पर पृथिवीमें ऐसा कोई धर्म नहीं मिलेगा जो, सनातनधर्मके अङ्गके अन्तर्गत न आ सके। सनातनधर्मके साधारण स्वरूपका यह सर्वलोकहितकर महत्त्व है। आज कलके प्रधान प्रधान पश्चिमी विद्वानोंने यह मुक्तकण्ठ होकर स्वीकार किया है कि, धर्मकी सूक्ष्मता और परलोक सम्बन्धीय गंभीर विचारमें जितना प्राचीन आर्य्यजातिने परिश्रम किया है और जितनी विलक्षणता दिखायी है, उतना आजतक और कोई जाति नहीं कर सकती है। यह आर्य्यधर्मकी श्रेष्ठताका ही प्रमाण है कि, ईसाई-धर्म्मावलम्बी होने पर भी प्रोफेसर रोथ (Professor Roth) प्रोफेसर मेक्समूलर (Professor Max Muller) प्रोफेसर विल्सन (Professor Wilson) प्रोफेसर हेगेल (Professor Hegel) डाक्टर डुवेसेन (Dr. Duessen) आदि पश्चिमी विद्वानोंने मुक्तकण्ठ होकर और धर्म्मोंके सम्मुख अभ्रांत वैदिक धर्म्मकी महिमा गायी है। यह आर्य्यधर्म्ममतकी श्रेष्ठताका ही प्रमाण है कि, विना चेष्टाके अपने आप ही फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका आदि प्रदेशोंके असंख्य विद्वान्गण धर्मके पक्षपाती बनते जाते हैं। इस कारण अब यह कहना ही पड़ेगा कि, आर्य्यगण ही अपनी श्रेष्ठ बुद्धिद्वारा ऐसे अभ्रान्त धर्म्मके आविष्कारकर्त्ता हैं। लौकिक विद्याओंकी उन्नतिमें वे सबके आदि गुरु हैं, तथा मनुष्यत्वकी पूर्णताका पूर्ण परिचय देनेवाली पूर्ण धर्म्मबुद्धिके प्राप्त करने वाले भी प्राचीन भारतवासी ही थे, इसमें सन्देह मात्र नहीं।

इस संसारमें सनातनधर्म्मके सिवाय अन्य जितने धर्म्म हैं, उनके धर्म्म लक्षण तथा अपने धर्म्म लक्षणमें पृथिवी स्वर्गकासा अन्तर है। इस संसारके अन्यान्य धर्म्मावलम्बी मात्र ही ईश्वर सम्बन्धीय और परलोकसम्बन्धीय दो चार दस बातोंको स्वीकार कर लेनेको ही अपना धर्म्म मानते हैं, परन्तु इस सनातन धर्म्मका धर्म्मलक्षण उस

रीति पर नहीं है; वैदिकधर्म्म विज्ञानके निकट इस संसारके यावन्मात्र पदार्थ धर्म्म और अधर्म्मसे पूर्ण है। आर्यगणका सोना, जागना, बैठना, उठना, चलना, फिरना, खाना, पीना, हँसना, रोना, अर्थात् ईश्वर उपासनासे लेकर मल मूत्र आदि त्याग तक सब ही धर्म और अधर्म्म विचारसे पूर्ण है। धर्मका लक्षण करनेमें सनातन आर्यशास्त्रने ऐसी सार्व्वभौम भित्तिपर धर्म्मको स्थित किया है कि, जिस भित्तिपर यह सृष्टि स्थिति और प्रलयात्मक संसार ही स्वयं स्थित है। धर्म्म शब्दका निरुक्तगत अर्थ "नियम" और इसका धातुगत अर्थ "धारण" करना है; इस कारण इस संसारको जिस ईश्वरीय नियमने धारण कर रक्खा है, उसीका नाम धर्म्म है। विचारनेसे यही सिद्धान्त होगा कि, सृष्टिके तीन गुण हैं अर्थात् सत्त्व, रज और तम, येही तीन सृष्टिकी सकल वस्तुओंमें देखनेमें आते हैं, रजोगुणसे उत्पत्ति, सत्त्वगुणसे स्थिति और तमोगुणसे लय, तीन अवस्थाओंके वशीभूत यह विश्वसंसार है; ऐसा कोई पदार्थ सृष्टिमें नहीं कि जो उत्पत्ति, स्थिति और लय, इन तीनों अवस्थाओंसे बचा हुआ हो; इस ब्रह्माण्डके अगणित ग्रहसमूहसेलेकर एक क्षुद्र तृणपर्यंत इन तीन अवस्थाओंके अधीन है। उसी प्रकार जीवप्रवाह भी इस नियमके अधीन ही प्रवाहित होता है, अर्थात् अवस्थाभेदसे जीवकी सृष्टि, स्थिति और मुक्ति भी समझी जा सकती है; अहंतत्त्वसे जीव मोहित होकर कर्म्म प्रवाहमें बहा, पुनः सृष्टिमें बहता रहा और तदनन्तर अपने रूपको पहचान इस मायाप्रवाहसे उपरत हो गया; यही तीन अवस्था जीवकी कही जा सकती हैं; परन्तु धर्म्म वही है, जो इस क्रियाके स्वाभाविक नियमको बाधा न दे, और अधर्म्म वह है, जो इस नियममें बाधा करे; अर्थात् जीव सृष्टिप्रवाहमें पड़नेके अनन्तर क्रमशः अपने गुणभेदसे उन्नत होता हुआ मुक्त होगा, इस क्रमोन्नतिमें जो बाधा दे, वह अधर्म और जो इसको सरल कर दे, वही धर्मपदवाच्य है। इसके उदाहरणमें विचारिये कि, किस भाँति हमारे सोने,

बैठने तकके साथ धर्म अधर्म स्पर्श कर सकता है; यथा—यदि एक पुरुष दिवानिद्रा लेनेसे तमोगुणकी वृद्धि करता है, और तमोगुण जीवकी इस क्रमोन्नतिमें बाधा करता है, तो अवश्य ही दिवानिद्रा अधर्मकी कारण हुई; क्योंकि जीवको जितना तमोगुण अर्थात् अज्ञान स्पर्श करेगा, उतना ही जीव जड़ताको प्राप्त हो जायगा और जितना सत्त्वगुणकी वृद्धि करेगा उतना ही चेतनत्व प्राप्त करके मुक्ति अर्थात् लयकीओर अग्रसर होगा; दिवानिद्राने इस क्रमोन्नतिमें बाधा की और सरल प्रवाहको रोका, इस कारण दिवानिद्रा अधर्म्मकार्य्य हुआ। सनातनधर्म्मशास्त्रोक्त धर्म्म और अधर्म्मपर विचार करनेसे यही सिद्धान्त होगा कि, पूज्यपाद त्रिकाल-दर्शी ऋषियोंने स्थूल और सूक्ष्म भेदसे धर्म्म और अधर्मके विषयमें जितना वर्णन किया है, वह सब इसी सिद्धान्तपर है। वेद, उपवेद, दर्शन, स्मृति, पुराण, और तन्त्र आदिशास्त्रोंने जो जो धर्म और अधर्म्मका विचार किया है, वह सब इसी सार्व्वभौम भित्तिपर स्थित है। यह सनातन-धर्म्मका ही वाक्य है कि "धर्मं यो बाधते धर्म्मो न स धर्म्मः कुधर्म तत्। अविरोधी तु यो धर्म्मः स धर्म्मो मुनिपुङ्गव" अर्थात् जो धर्म्म अन्य धर्म्मको बाधा दे, वह कदापि धर्म्म नहीं है, परन्तु कुधर्म्म है और जो धर्म्म अविरोधी है, वही यथार्थमें धर्म्म है। ऐसे सार्व्वभौममतयुक्त, गम्भीर और सर्वजीवहितकारी महावाक्य अभ्रान्त सनातनधर्म्ममें ही मिल सकते हैं।

आर्यशास्त्रमें धर्मके चार भेद कहे गये हैं—यह हम पहले ही कह चुके हैं। उनमेंसे साधारणधर्मका स्वरूप भी हम ऊपर कह चुके हैं। विशेष धर्म विशेष विशेष अधिकारीका हुआ करता है, यथापुरुषकेलिये पुरुष-धर्म, नारीकेलिये नारीधर्म, गृहस्थकेलिये प्रवृत्ति धर्म, सन्यासीके-लिये निवृत्ति धर्म, राजाकेलिये राजधर्म, प्रजाकेलिये प्रजा धर्म आर्यके-लिये आर्यधर्म, अनार्यकेलिये अनार्यधर्म ब्राह्मणकेलिये ब्राह्मणधर्म, क्षत्रियकेलिये क्षत्रियधर्म, वैश्यकेलिये वैश्यधर्म, शूद्रकेलिये शूद्रधर्म

इत्यादि। वर्णाश्रमधर्म भी विशेष धर्म है; क्योंकि वह भी पृथ्वीकी सब मनुष्य जातियोंके उपयोगी नहीं है, जो मनुष्यजाति आध्यात्मिक लक्ष्यको प्रधान समझती है और चिरकाल तक पृथिवीमें जीवित रहना चाहती है, ऐसी मनुष्यजातिकेलिये ही वर्णाश्रमरूप विशेषधर्म विहित है, सबकेलिये नहीं।

असाधारणधर्मकी विलक्षणता कुछ और ही है। द्रौपदीका पांच पति ग्रहण करना, पुनः सती बने रहना, विश्वामित्रका ब्राह्मण बन जाना, ये सब असाधारण धर्मके दृष्टान्त हैं। असाधारण धर्म्ममें विशेष योगशक्ति और आत्मबलकी आवश्यकता होती है। साधारण मनुष्य उस धर्मके अधिकारी नहीं हो सकते हैं।

आपद्धर्मका चमत्कार कुछ और ही है। आपद्धर्म भावप्रधान है। विपत्तिमें पड़कर जीव अपने मुख्य उद्देश्यके पालनकेलिये आपद्धर्म समझ पाप भी करता हो, तो वह भी आपद्धर्मकेअनुसार पुण्य ही होगा। महाभारतमें कथा है कि, अनेक वर्षका दुर्भिक्ष होनेपर विश्वा-मित्रजीने कुत्तेके मांसको ग्रहण करके उससे बलि वैश्वदेव करके भोजन करनेका उद्योग किया था। यह आपद् धर्म है। इस घोर कलिकालमें विशेषतः हिन्दूजातिके इस घोर विपत्तिके दिनोंमें विदेशभ्रमण, खान, पान, आचरण आदि अनेक कार्योंमें उसको आपद्धर्मका आश्रय अवश्य अवश्य लेना पड़ेगा; परन्तु कैसे ही आपद्धर्ममें उसको आचारभ्रष्ट होना पड़े तथापि सनातनधर्मका महत्त्व भूलना उसको उचित नहीं होगा। उसको इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि, वह आत्मरक्षाके-लिये आपद्धर्मका पालन कर रहा है। इन सब सिद्धान्तोंका विस्तारित वर्णन 'प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत' नामक ग्रन्थमें किया जायगा।

उक्त चार विभागोंमें विभक्त और ७२ शाखाओंसे युक्त सर्वव्यापक सनातनधर्म पृथ्वीके सब धर्मोंका पितृस्वरूप है और सर्वलोकहितकर है, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

●

मुक्तिविज्ञान।

(२३)

सनातनधर्मनेता पूज्यपाद महर्षियोंने इस संसारको क्षण भंगुर और असत्य जानकर मनुष्योंको यही उपदेश दिया है कि, जीवोंको सदा वैषयिक लक्ष्य छोड़कर आत्माकीओर लक्ष्य करना उचित है। इस ब्रह्माण्डके यावन्मात्र पदार्थ, स्वर्गसे लेकर पृथिवी तक, तथा मानसिक सुखसे लेकर सकल शारीरिक सुख तक, सब पदार्थ हो त्रिगुणात्मक हैं; जब त्रिगुणात्मक हैं, तो परिवर्त्तनशील और नाशवान् भी हैं, इस कारण पूर्णज्ञानी महर्षियोंके निकट यह संसार स्वप्नवत् मिथ्या है। उन पूज्यपादोंने जितने शास्त्र प्रणयन किये हैं, उन्होंने जो कुछ संसारिक अथवा आध्यात्मिक नियम प्रकाशित किया है, वे जो कुछ उपदेश कर गये हैं, उन सबोंमें यह एक मात्र अभ्रान्त लक्ष्य ही पाया जाता है कि "बुद्धिमान् जीव वे ही कहे जा सकते हैं, जो सदा अपना लक्ष्य अन्तर्जगत्की ओर रखते हों"। संसारकी ओरसे मुँह फेरकर परमात्माकीओर अग्रसर होना ही उनके सब उपदेशोंका सार है। इसी भित्तिपर स्थित हो कर उन्होंने जगत्को अपनी अनन्त ज्ञानज्योति प्रदान की थी। उनके उपदेशोंका यही सिद्धान्त है कि, सर्वशक्तिमान् ईश्वरने अपनी महाशक्तिकी सहायतासे इस संसारको उत्पन्न किया है; इस कारण इस ब्रह्माण्डमें दो ही पदार्थ अनुभवयोग्य हैं, यथा एक जड़ और एक चेतन अर्थात् एक पुरुषभाव और एक प्रकृति भाव। जिनमेंसे पुरुष भाव ज्ञानमय चेतन और प्रकृतिभाव जड़मय त्रिगुणात्मक है। चेतनसत्ता द्वारा जड़ अर्थात् प्रकृति चैतन्ययुक्त होकर कार्य करनेके योग्य हुई है और जड़सत्ता अर्थात् प्रकृतिका ही विस्तार यह संसार है। जब प्रकृतिका रूप त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणमय है, तब अवश्य ही प्रकृति

परिवर्तनशील है; इसी कारण प्रकृतिविस्ताररूप एवं लीलाभूमिरूप यह संसार सदा उत्पत्ति, स्थिति और लयके अधीन होकर त्रितापका कारण हो रहा है। जब संसार ही त्रिगुणात्मक और त्रिताप युक्त है, तो इससे सम्वन्ध रखने वाले जीव अवश्य ही उसी नियमके वशीभूत होकर सदा त्रितापसे तापित रहेंगे, इसमें सन्देह मात्र नहीं; परन्तु चेतन-सत्ता आत्मा सदा एक रूप है, उस भावमें कुछ भी परिवर्त्तन होनेकी सम्भावना नहीं क्योंकि आत्मभाव त्रिगुणातीत और ज्ञानपूर्ण भाव है। जहाँ ज्ञानकी पूर्णता है, वहाँ आनन्दकी पूर्णता होना भी निश्चय है, इस कारण आत्मभाव परमानन्दपूर्ण भाव है। जीवमें जितनी जड़सत्ता अर्थात् अज्ञानकी अधिकता रहती है, उतनी ही जीवमें त्रितापकी वृद्धि हुआ करती है; परंतु जीवमें जितनो चेतनभावकी वृद्धि होती जाती है, उतनाही जीव आनंदको प्राप्त होता जाता है और यह चेतनभावको पूर्णता ही परमानन्दरूप मोक्ष पदकी प्राप्ति है। जीव क्रमोन्नतिद्वारा इसो रीतिपर जड़ राज्यमें होकर चेतन राज्यका अधिकारी होता हुआ पूर्ण ज्ञानमय कैवल्य पदको प्राप्त कर लेता है। जीवकी इस क्रमोन्नतिमें धर्म्म ही उसकेलिये एक मात्र सहायक है; केवल मात्र धर्म पथपर चलनेसे ही जीव क्रमशः परमानन्दपूर्ण आत्मपदको प्राप्त कर लेता है। जोवमें जड़ और चेतन सत्ता दोनों वर्त्तमान हैं, इस कारणसे ही जीवके साथ जड़ सत्तारूप कर्म बन्धन और चैतन्य सत्तारूप ज्ञान देख पड़ता है। यह चैतन्य सत्ताके प्रकाशका ही कारण है कि, जीव सदा सुख अन्वेषण करता हुआ कर्म्म बन्धनमें फँसा रहता है; यदि च कर्म्म बन्धन जड़ सत्ता अर्थात् प्रकृतिभाव है परन्तु सुख अन्वेषण करना चेतनसत्ता अर्थात् आत्मभावका परिचायक है। जीव जो कुछ करता है, वह सुखकी ईच्छासे ही करता है; यदि जीवमें सुखप्राप्तिकी इच्छा न होती तो कदापि जीव कर्म्मप्रवाहमें पुरुषार्थ न करता। यह तो सिद्धान्त ही है कि, सब जीव ही सुख-अभिलाषासे कर्म्म करते हैं; परन्तु अब विचारने योग्य

बात यह है कि, जीव विषय वासना पूर्तिसे क्या सुख प्राप्त कर सकते हैं ? अथवा सुखका लक्ष्य कुछ और ही है ? इसके उत्तरमें यही निश्चय होगा कि, यदिच विषय वासनाके पूर्ण होते समय एक प्रकारकी सुखदायी वृत्ति अनुभव होती है और विषय तृप्ति होनेके पूर्व भी आशारूपसे कुछ सुखसा प्रतीत होता हैं; परन्तु ये उभय आनन्द ही यथार्थमें आनन्द नहीं है, क्योंकि विषयीका लक्ष्य यदिच सुखकीओर था और उसको यही आशा थी कि, विषय वासना पूर्ण होते ही न जाने कैसा अपूर्व सुख पावेंगे, परन्तु जब विषय वासना पूर्ण हो गयी, तो उसके अभावसे एक दूसरा दुःख उठ खड़ा हुआ। इसके उदाहरणमें विचार सकते हैं कि एक मनुष्यकी यह वासना हुई कि, मुझे सहस्र मुद्राकी प्राप्ति हो, तो मैं परम सुखको प्राप्त हो जाऊँ; तत्पश्चात् यदि उसकी वह वासना पूर्ण हो, तो उसका क्या वह आनन्द स्थायी होगा ? कदापि नहीं, सहस्र मुद्रा प्राप्त होते ही उसको पुनः अधिक प्राप्तिकी इच्छा होगी और इसीप्रकार उसमें सुख अन्वेषणकारी महादुःख बना ही रहेगा। इन विचारोंसे यही सिद्ध होता है कि, यदिच जीवोंकी गति सुख अन्वेषणकीओर है, परन्तु विषय अन्वेषणमें वह सुख, जीवोंको नहीं प्राप्त होता; वैषयिक सुख एक भ्रमपूर्ण सुख है। यह पूर्व ही सिद्ध हो चुका है कि, पूर्णज्ञानरूप आत्मामें ही पूर्ण सुखकी स्थिति है। वह पूर्णसुखकी आत्मसत्ता जीवमें है। इसकारण ही जीवगण उसी आत्मभावको ढूंढते हुए अपने अज्ञानकेकारण प्रकृति लीला विस्तार रूपी वैषयिक मरीचिकामें फँस जाते हैं; उनका लक्ष्य सत्यकी ओर होनेपर भी मृगकी नांई भूलकर वे कुछसे कुछ समझने लगते हैं और इसी भ्रमके कारण उनकी स्वाभाविक गति चैतन्यकी ओर होने पर भी वे जड़राज्यमें फँसे ही रहते हैं। जीवके इस फँसने रूप कार्य्यंका कारण एक मात्र अविद्या अर्थात् अज्ञान है; और धर्म्मं साधनरूप दीपककी सहायतासे ही जीव क्रमशः अग्रेसर होता हुआ परमानन्दरूपी आत्म-

भूमिमें पहुँच जाता है। सनातनधर्मोक्त साधनशैलीद्वारा जीव क्रमो-न्नतिको प्राप्त करता हुआ अन्तमें चैतन्यकी पूर्णताको प्राप्त करके परमा-नन्दपदका अधिकारी हो जाता है। इस पदपर पहुँचनेसे चैतन्यका सम्बन्ध जड़से पूर्णरूपसे छूट जाता है; चैतन्यका अंश जीव तब जड़रूप प्रकृतिके फन्देसे छूटकर आवागमनरूप प्रवाहसे बच जाता है। वायु-कम्पित जलका बुलबुला तब अगम अपार समुद्रगर्भमें लयको प्राप्त होकर समुद्रके पूर्णानन्दका अधिकारी हो जाता है। यह चैतन्यकी पूर्णता, यह ज्ञानकी चरमसीमा, यह परमानन्दका परमपद ही सनातनधर्म्मका लक्ष्य है और यही मोक्ष कहलाता है। वेद और शास्त्रके अनुसार मनुष्यजीवनके चार लक्ष्य माने गये हैं, यथा—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष, येही चारों चतुर्वर्ग कहलाते हैं। सृष्टिके धारक भगवान् विष्णुके चारों हाथोंमें जो चार आयुध गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म हैं, ये चारों यथाक्रम काम, अर्थ, धर्म्म और मोक्षके परिचायक हैं। इन्हीं चारोंमें सब पदार्थोंका समावेश होता है और इन्हीं चारोंके-लिये जीव पुरुषार्थमें प्रवृत्त रह सकता है; परन्तु काम और अर्थ गौण तथा धर्म्म और मोक्ष प्रधान हैं; क्योंकि धर्मलक्ष्यविहीन जो काम और अर्थकी प्राप्ति है, सो मनुष्यके नरकका कारण बनती है और धर्मसे युक्त होनेपर वह अभ्युदय तथा स्वर्गादिका कारण बनती है। पूज्यपाद मह-र्षियोंका यह सिद्धान्त है कि, धर्मके द्वारा प्रथमदशामें ऐहलौकिक अभ्यु-दय, दूसरी दशामें पारलौकिक अभ्युदय और उसका अन्तिम फल उदय होनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति रूपी मोक्ष सबके अन्तिम और सबसे श्रेष्ठ है। इस भित्तिपर स्थित होकर इसी अधिकारको प्राप्त करानेके लिये पूज्यपाद महर्षिगण अगणित शास्त्र प्रणयन कर गये हैं। सनातनधर्म्मके चारों वेद, सनातनधर्म्मके सब दर्शन शास्त्र, सनातनधर्म्मकी सब स्मृति और पुराण, सनातनधर्मके सब उपवेद और तन्त्र आदि शास्त्र सब इसी एक मात्र लक्ष्यके प्राप्त

करनेके अर्थ एक वाक्य होकर विभिन्न अधिकारियोंको विभिन्न मार्ग द्वारा इसी एक स्थानपर पहुँचानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

—:०:—

उपसंहार।

(२४)

नवीनसभ्यजगत्‌के विचारकी सहायतासे प्रवीण भारतकी सर्वतोमुखिनी महिमाका कुछ दिग्दर्शन कराया गया। यद्यपि त्रिकालदर्शी, सत्यदर्शी, पूज्यचरण आर्य्यमहर्षियोंकेद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तोंके गौरवज्ञानकेलिये उनका आप्त वचन ही यथेष्ट प्रमाण है, तथापि वर्त्तमान देश, काल, पात्रके विचारसे आवश्यकतानुसार नवीन प्रमाणोंका भी यथेष्ट सन्निवेश किया गया। अब प्रत्येक आर्यसन्तानका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि, अपने नवीन हृदयमें प्रवीण भारतकी महिमामयी अधिष्ठात्री—देवताकी मूर्त्ति स्थापित करके उनके आराध्य चरणोंमें निरन्तर श्रद्धाकेसाथ सिर झुकावे। इसीमें हमारा परम कल्याण है। पाश्चात्य पण्डित मैक्समूलरने एकस्थान पर कहा कि "जो जाति अपने प्राचीन इतिहासके गौरवको भूल जाती है, वह कदापि अपने जातीयजीवनमें उन्नति लाभ नहीं कर सकती है।" आर्यजाति पृथिवीकी समस्त जातियोंकी शीर्ष स्थानीय होनेपर भी आज जो संसारके सामने हीनप्रभ हो रही है, इसका प्रधानतम कारण अपनेको तथा अपने पिता पितामहोंके गौरवको भूल जाना ही है; क्योंकि अतीत जीवनकी गौरवमयी भित्तिपर प्रतिष्ठित भविष्यत् जातीय जीवन ही—बहुकालस्थायी

तथा यथार्थमें जीवन पदवाच्य हो सकता है। किन्तु कालकी कुटिल गतिके प्रभावसे भारतवासी कुछ दिनोंसे अपने प्राचीनजीवन तथा पूर्वजोंके गौरवको भूलने लग गये थे। धर्महीन, जातीय गौरवहीन, विजातीय शिक्षा तथा आदर्शके प्रभावसे भारतवासी अपने ही देशमें विदेशी बनने लग गये थे। उन्हें अपनी कोई भी बात अच्छी नहीं लगती थी, अपने पूर्वजोंके जीवनमें कोई उन्नत बात हो सकती है, ऐसा विश्वास भारतवासियोंके हृदयसे एकबार ही लुप्त होने लग गया था, प्रचीन शिल्प कला तथा आध्यात्मिक विद्याकी यहां कुछ भी उन्नति हुई थी ऐसा माननेमें भी उनको सङ्कोच अनुभव होने लगा था और यहाँ तक दुर्दशा हो गयी थी कि, विदेशियोंके विकृत पाठको पढ़ कर नवीन भारतवासी अपने पूज्यपाद पितापितामहकी निन्दा करनेमें तथा उनकी समस्त विद्याओंको नीचा दिखानेमें ही अपनी विद्वत्ता तथा महत्त्व समझने लग गये थे। उनका बनाया हुआ वेद कृषकोंका गान है, उनका बनाया हुआ पुराण मिथ्या कपोल कल्पना मात्र है, उनके पूर्वज अज्ञान और कुसंस्कार पूर्ण असभ्य थे, उनका सामाजिक आचार, रीति-नीति जातीय अवनतिकर कुसंस्कारमात्र है इत्यादि इत्यादिरूपसे अपने देशकी सभी बातोंकी निन्दा करनेमें और विदेशीय आचरणकी स्तुति करनेमें ही भारतवासी अपना पाण्डित्य, प्रतिभा तथा प्रत्नतत्त्वज्ञानका सुलक्षण समझने लग गये थे। परन्तु अब श्रीभगवान्‌की अपार कृपासे भारतवासियोंके हृदयाकाशसे अज्ञानका वह मेघ दूर होरहा है। भारतवासी अब अपने स्वरूपके पहचाननेमें तथा अपने अतीत जीवनके गौरवज्ञानमें अति उन्मुख हो रहे हैं। इसलिये इससमय इसप्रकारके प्राचीन गौरवगाथापूर्ण पुस्तककी अति आवश्यकता होनेसे इसका प्रकाश किया गया। भारतवासियोंको सदा ही स्मरण रखना चाहिये कि, उनकी स्थूल जातीय मुक्ति अथवा आध्यात्मिक मुक्ति दोनों ही अपने यथार्थ स्वरूपज्ञानपर ही निर्भर करती है। इस सत्यसिद्धान्तको हृदयमें धारण करके 'प्रवीणभारत' की सर्वा-

ङ्गीय पूर्णतापर आर्यजाति जितनी श्रद्धायुक्त होगी और प्राचीन आर्य-महर्षियोंके आदर्शपर अपने जीवनको गठित करनेके लिये पुरुषार्थशील होगी, उतनी ही उनकी पूर्वमहिमा पुनः प्रकट होकर आर्यजातिको समस्त संसारके सामने आदर्शजातिरूपसे प्रतिष्ठा पाने योग्य बना देगी, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंकी महिमा जितनी की जाय, उतनी ही कम है। जो कुछ मनुष्यज्ञान उपयोगी आविष्कारसमूह पूज्यपादगण कर गये हैं, जो कुछ सदाचार एवं धर्म्मका वर्णन वे प्रकाशित कर गये हैं, उस प्रकारकी पूर्णता न कभी हुई है और न होगी। इसकारण आर्य्य सन्तानमात्रको ही उचित है कि, अपने पूर्व्वगौरवको विस्मृत न करे और धैर्य्य, साहस, उद्यम तथा धर्म्मवृत्तिकी सहायतासे क्रमशः अपने पूर्व्व अवस्थाकीओर अग्रेसर होनेकेलिये पुरुषार्थ करे। आर्य्य सन्तानगण स्वभावसे ही शान्तियुक्त और बुद्धिजीवी हैं; शान्तगुणसे बुद्धिजीवी शान्त बुद्धिकी उन्नति होती है, और बुद्धिमान् पुरुष ही सत् असत् विचारयुक्त होकर अपना कर्तव्य विचार सकते हैं; इस कारण भारत-वर्षीय महात्माओंको आशा है कि, आर्य्य सन्तानगण पुनः अपने स्वरूपका अनुभव करनेमें समर्थ होंगे। आर्य्य सन्तानोंको सदा स्मरण रखना उचित है कि, वे ही पृथिवीके आदि गुरु वंशोद्भव हैं; उनको विचारना उचित है कि, उनके पूर्व्व पुरुषोंका ज्ञान उनके पूर्व्व पुरुषोंकी जीव हितकारी वृत्ति, उनके पूर्व्व पुरुषोंका विषय वैराग्य और उनके पूर्व्व पुरुषोंके आध्यात्मिक विचारद्वारा ही आज दिन जगत् आलोकित हो रहा है। उनको विचारना उचित है कि, प्राचीन आर्य्य-जाति ही आदि मनुष्य, प्राचीन आर्य्यजाति ही आदि शिक्षित, प्राचीन आर्य जाति ही आदिसभ्य, प्राचीन आर्य्यजाति ही आदि शिल्पी, प्राचीन आर्य्यजाति ही आदि शिक्षक, प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि मनन शील,

प्राचीन आर्य्यं जाति ही आदि धार्मिक और प्राचीन आर्य्यं जाति ही आदि आध्यात्मिक ज्ञान अनुसंधानकारिणी थी, इसमें सन्देह नहीं। उनको सदा स्मरण रखना उचित है कि पूज्यपाद आर्य्यं महर्षिगण ही आदि कवि, पूज्यपाद आर्य्यं महर्षिगण ही आदि ज्ञानी, पूज्यपाद आर्य्यं महर्षिगण ही आदि विज्ञानवित्, पूज्यपाद आर्य्य महर्षिगण ही आदि योगी और पूज्यपाद आर्य्य महर्षिगण ही आदि भगवद्भक्त थे, इसमें संशय मात्र नहीं है।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।



दैवीमीमांसा दर्शन

दैवी मीमांसादर्शन भक्तिका दर्शन है। यह छठीं ज्ञानभूमिका दर्शन है। यह दर्शन शताब्दियोंसे लुप्त हो गया था। भक्तिके इस दर्शनके अभावसे भक्तिके आचार्यगण श्री रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्यआदिने सप्तम ज्ञानभूमिके दर्शन वेदान्त दर्शनको ही अपने-अपने मतकेअनुसार द्वैतमें खींचकर भक्तिका विषय प्रतिपादित किया है। महर्षि अंगिराके प्रसादसे भगवत्पूज्यपाद स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजने समाधियोगसे इसका आविष्कार किया था। जनसाधारणके बुद्धिगम्य बनानेकेलिये इसपर विस्तृत भाष्यका भी प्रणायन किया। इस दर्शनके रसपाद, उत्पत्तिपाद, स्थितिपाद एवं लयपाद इन चारों पादोंमें परमात्माके ब्रह्म, ईश, विराट्, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जीवकी पारलौकिक गति, दैवी जगत्का स्वरूप, त्रिगुण और त्रिभावका स्वरूप, अवतारतत्त्व, महामायाके विद्या और अविद्या द्विविध रूप, मन्त्रकी महिमा, उपासनाके विविध भेद, योगके लक्षण, योग साधन प्रणालीके भेद, उपासनामें भक्तिका प्राधान्य, नारदादि ऋषियोंके मतानुसार भक्तिके विविध लक्षण ध्यान और समाधिके भेद, पराभक्तिकी अवस्थाओंका वर्णन आदि अनेक विषयोंका सरल विवेचन किया गया है। इस दर्शनके आविष्कारसे दार्शनिक जगत्का बड़ा भारी अभाव दूर हुआ है। मूल्य—रसपाद और उत्पत्तिपाद ३ रु० ५० पै०; स्थितिपाद और लयपाद ९); दैवी मीमांसादर्शन सूत्र और संस्कृत भाष्य मूल्य—३ रु०

भारतवर्षका इतिवृत्त

[लेखक—पं० गोविन्दशास्त्री दुग्वेकर]

इस ग्रन्थको हिन्दी जगत्के नामाङ्कित लेखक पं० गोविन्दशास्त्री दुग्वेकरने श्री भारतधर्म महामण्डलके संस्थापक भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी आज्ञाकेअनुसार उन्हींके शब्दोंमें लेख-बद्ध किया है। ग्रन्थके बारह अध्याय हैं। यथा—(१) ब्रह्माण्ड और भारतवर्ष, (२) ब्रह्माण्डका मानचित्र, (३) जगद्गुरु भारतद्वीप, (४) सृष्टि प्रकरण और कालचक्र, (५) मनुष्य सृष्टिका आदिस्थान और वर्णाश्रम बन्ध, (६) भारतद्वीपका सामाजिक संघटन, (७) वेद और शास्त्रका अनादित्व, (८) भारतद्वीपका धर्म और उसकी ज्ञानगरिमा, (९) राजानुशासन विज्ञान, (१०) प्राचीन भारतद्वीपकी शिक्षा प्रणाली, (११) रामायण, (१२) महाभारत।

इस ग्रन्थके इन अध्यायोंके नामसे इसके महत्वपूर्ण विषयोंपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। इसके अध्ययनसे प्राचीन भारतके आदर्श, राज-शासन प्रणाली, सामाजिक संघटन, शिक्षा प्रणाली, सामाजिक संघटन, शिक्षा प्रणाली, भारतका जगद्गुरुत्व किन कारणोंसे है, आदि अनेक विषयोंपर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। इसे प्रत्येक गृहस्थको अपने घरमें अवश्य रखना चाहिये तथा अध्ययन करना चाहिये। मूल्य—३)

●

श्रीविश्वनाथो जयति ।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन

समाजकी भलाई ! मातृभाषाकी उन्नति !!
देशसेवाका विराट् आयोजन !!!

इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे हो सकता है ? संसारके इस छोरसे उस छोर तक चाहे किसी विचारशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि धर्मके प्रचारसे; क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है । भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधःपतित और दीन हीन दशामें क्यों पच रहा है ? इसका भी उत्तर यही है कि, वह धर्मभावको खो बैठा है । यदि हम भारतसे ही पूछें कि तू अपनी उन्नतिकेलिये हमसे क्या चाहता है ? तो वह यही उत्तर देगा कि मेरे प्यारे पुत्रो ! धर्मभावकी वृद्धि करो । संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेकेलिये उद्यत हुए हैं; उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि, ऐसे कार्योंमें कितने विघ्न और कैसी बाधायें उपस्थित हुआ करती हैं । यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासम्भव उनसे लाभ ही उठाते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि, उनके कार्योंमें उन विघ्न बाधाओंसे कुछ रुकावट अवश्य ही हो जाती है । श्रीभारतधर्म महामण्डलके धर्मकार्यमें इसप्रकारकी अनेक बाधायें होनेपर भी अब उसे जनसाधारणके हित साधन करनेका सर्वशक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया है । भारत अधार्मिक नहीं है, हिन्दुजाति धर्मप्राण जाति है, उसके रोमरोममें धर्मसंस्कार ओतप्रोत हैं । केवल वह अपने रूपको धर्मभावको भूल रही है । उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना—धर्मभावको स्थिर रखना ही श्रीभारतधर्म महामण्डलका एक और प्रधान पवित्र उद्देश्य है । यह कार्य गत ७४ वर्षोंसे महामण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों उसको अधिक

सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यों वह अधिक उत्साहसे यह काम करेगा। उसका विश्वास है कि, इसी उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्यसाधनकेलिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकोंकेद्वारा धर्मप्रचार करना और (२) धर्मरहस्य-सम्बन्ध मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाशन करना। महामण्डलने दोनों मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथायोग्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है। विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिक पत्रिकाओंका सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रन्थोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्त की है। उपदेशकोंद्वारा जो धर्मप्रचार होता है, उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेकेलिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम आवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो बार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन विना पुस्तकोंकी सहायता लिये नहीं हो सकता; इसके सिवाय सब प्रकारके अधिकारियोंकेलिये एक वक्ता कार्यकारी नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचारद्वारा यह काम सहज हो जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महामण्डलने भी सब प्रकारके अधिकारियोंके योग्य पुस्तकका निर्माण और प्रकाशन किया है। सारांश देशकी उन्नतिके लिये, भारतके गौरवकी रक्षाकेलिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेकेलिये महामण्डलने अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन किया है।

सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि, वे ऐसे सत्कार्यमें श्रीमहामण्डलका हाथ बटावें एवं इसकी सहायता कर अपनी ही उन्नति करनेको प्रस्तुत हों।

शास्त्रप्रकाश विभाग
श्रीभारतधर्म महामंडल
जगतगंज, वाराणसी कैण्ट

श्रीभारतधर्म महामण्डलके शास्त्र-प्रकाश विभागद्वारा
प्रकाशित

दार्शनिक तथा धार्मिक ग्रन्थ

कर्ममीमांसा दर्शन

(सरल हिन्दी भाष्य)

महर्षि भरद्वाजकृत नितान्त दुर्लभ ग्रन्थ 'कर्ममीमांसादर्शनको भगवत् पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजप्रभुने अपने समाधियोगसे प्राप्त किया था। महर्षि जैमिनिकृत जो कर्ममीमांसा दर्शन उपलब्ध है, उसमें केवल यज्ञयागका वर्णन है, जिनका अनुष्ठान इस समय असम्भव प्राय हो गया है। इससे इस निष्कर्षपर पहुँचना पड़ता है कि, मानवके दैनिक जीवनसे सम्बन्धित कर्मरहस्य तथा कर्मविज्ञान-सम्बन्धी प्रथम भाग कालक्रमसे लुप्त हो गया था, जिसको पूज्यपाद स्वामीजी महाराजने यौगिक अनुसन्धानद्वारा महर्षि भरद्वाजसे प्राप्त किया। महर्षि भरद्वाज-कृत यह दर्शन चार पादोंमें विभक्त है, जिनके नाम धर्मपाद, संस्कारपाद, क्रियापाद और मोक्षपाद हैं। धर्मपादमें कर्मके साथ धर्मका सम्बन्ध, धर्मके अंगोपांग, पुरुषधर्म, नारीधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, आपद्धर्म, प्रायश्चित्त प्रकरणआदि धर्म सम्बन्धी अनेक विषयोंका वर्णन है। संस्कार-पादमें संस्कार शुद्धिसे क्रियाशुद्धि कैसे होती है तथा संस्कारसे कर्मकी उत्पत्ति एवं कर्मसे संस्कारकी उत्पत्ति कैसे होती है, कर्मसे समस्त विश्व-ब्रह्माण्डका कैसा सम्बन्ध है इत्यादि विषयोंका विस्तृत विवेचन किया गया है। इसीप्रकार क्रियापादमें क्रियाकी प्रतिक्रिया कैसे होती है, जीवका परलोकमें गमन कैसे होता है, भावशुद्धिसे क्रियाशुद्धि कैसे होती है, आदि विषयोंका भलीभाँति विवेचन किया गया है। अन्तिम मोक्षपादमें मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है, इसके विज्ञानका पूर्ण विवेचन किया गया है। मूल्य धर्मपाद २), संस्कारपाद २) रु० २५ पैसा; क्रियापाद और मोक्षपाद रु० ५)।

श्रीभारतधर्म महामण्डल।

सनातनधर्मी हिन्दूजातिकी यह अखिल भारतीय महासभा है। सनातनधर्मके प्रधान धर्माचार्य्य इसके संरक्षक हैं। इसके कई श्रेणीके सदस्य तथा अनेक शाखासभायें हैं। हिन्दू नर-नारी मात्र इसके सदस्य हो सकते हैं। साधारणसदस्योंको केवल ५/- रुपया वार्षिक चन्दा देना होता है।

पत्र व्यवहारका पता :—
प्रधान मन्त्री,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल
प्रधान कार्यालय,
जगत्‌गंज, वाराणसी कैन्ट

मुद्रकः—विश्वम्भरनाथ द्विवेदी, आनन्द-कानन प्रेस, वाराणसी